गीता-सार

सत्गुरू
श्री गीता भगवान के
मुखार-विंद से

विषय-सूची

गीता-सार

क्र.सं.	विवरण	पेज नं.
1.	विषाद योग (शोक योग)	3
2.	सांख्य योग	4
3.	कर्मयोग	9
4.	ज्ञान कर्म, सन्यास योग	12
5.	कर्म सन्यास योग	15
6.	ध्यान योग	18
7.	ज्ञान योग	21
8.	अक्षर ब्रह्म वाला योग	25
9.	राज विद्या राजयोग	29
10.	विभूति योग	33
11.	विश्व रूप दर्शन योग	38
12.	भक्ति योग	44
13.	क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ विभाग योग (योग वाला)	47
14.	त्रिगुणमयी माया (तीन गुणों का) विभाग–योग	52
15.	पुरूषोत्तम योग	56
16.	दैवी आसुरी सम्पदा योग	59
17.	श्रद्धा योग (श्रद्धा के तीन भेद)	63
18.	मोक्ष सन्यास योग	67
	संक्षिप्त गीतासार	76 से

अध्याय पहला–विषाद योग (शोक योग)

अर्जुन ने कृष्ण से कहा, ''पहले मुझे दिखाइये कि युद्ध–स्थल पर कौन–कौन है ? जिनके साथ मुझे युद्ध करना है।'' कृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में रथ खड़ा किया और दिखलाया चाचे, मामे, भाई, दादा, गुरू, बेटे, पोते जिन को देखकर अर्जुन के हाथ पाँव कांपने लगे। हाथों से गांडीव धनुष गिर गया। अर्जुन बोले, ''न मैं जीतना चाहता हूँ, न हीं राज भोगना और न जीवन। उनको मारने से पाप लगेगा, तीनों लोकों का राज्य भी मुझे नहीं चाहिये। कुल नाश होगा तो अधर्म फैलेगा, वर्णसंकर औलाद (बच्चे) पैदा होगी, स्त्रियाँ खराब होंगी, फिर वो बच्चे पित्तरों को नहीं पूजेंगे पित्तर नर्क में जायेंगे तो वो नर्क मेरे को ही मिलेगा।'' ऐसे बोलकर अर्जुन धनुष नीचे रखकर रथ के पीछे जाकर बैठ गया।

अर्जुन को अपशकुन (खराब संकेत) दिखाई दिये बोला अफसोस है कि महापाप करने के लिये हम तैयार हुये हैं। ''कौरव'' शस्त्र लेकर अगर मुझे को मारेंगे भी तो भी मैं उन को नहीं मारूंगा।

अध्याय दूसरा-सांख्य योग

श्लोक 1 से 9

संजय ने कहा ''इस तरह अर्जुन की आँखों में आंसू थे, शोक से व्याकुल अर्जुन से भगवान कृष्ण ने कहा'' –

''हे अर्जुन ! यह मोह तुम को इस वक्त कैसे हुआ ? युद्ध न करने से तुम्हें न तो स्वर्ग मिलेगा न ही कीर्ति अतः कमजोरी एवं कायरता को छोड़ करके युद्ध करो।

अर्जुन ने कहा'' लड़ाई के मैदान में गुरूओं को मारने से तो भीख मांग के खाना अच्छा है और लड़ाई में कौन जीतेगा वो भी पता नहीं है, उन को मार के खून से भरे हाथों से मैं भोग कैसे भोगूंगा ? मैं तुम्हारा शिष्य हूँ तुम्हारी शरण आया हूँ मुझे सलाह दो शिक्षा दो ''ऐसा कहकर कि मैं युद्ध नहीं करूंगा अर्जुन तीर कमान नीचे रख कर बैठ गया।

श्लोक 10 से 15

कृष्ण ने कहा कि ''तू शोक नहीं करने वाले मनुष्यों के लिये शोक कर रहा है और पंडितों के जैसे शब्द कह रहा है। ऐसे नहीं है कि तू मैं या ये राजा पहले नहीं थे या इस के बाद नहीं रहेंगे, हे अर्जुन ! सर्दी–गर्मी, सुख–दुख, देने वाली इन्द्रियों के विषय अनित्य एवं क्षणभंगुर है, सुख–दुख को समान समझने वाला मोक्ष के लायक है।

श्लोक 16 से 38

सत्य का कभी अभाव नहीं है, असत्य का भाव नहीं है। ज्ञानी को सत्य असत्य का पता रहता है। आत्मा नाश रहित अप्रमेय (प्रमाण के साथ सिद्ध की हुई नहीं है) नित्य स्वरूप, अजन्मा अमर पुरातन, सनातन अचिंत्य विकार रहित, (अछेद्य) गल नहीं सके, जल नहीं

सके, सूख नहीं सके सर्वव्यापि स्थिर है, और मन इंद्रियों के पहुँच से दूर है। पर जो समझता है कि आत्मा मरती है या मारती है वो सत्य नहीं जानते। जैसे पुराने वस्त्र बदल कर दूसरे वस्त्र पहनते हैं वैसे जीव आत्मा पुराने कपड़े (शरीर) को त्याग कर नये शरीर को धारण करती है। इसलिये तुमको शोक नहीं करना चाहिये। अगर तुम समझते हो कि आत्मा जन्म लेती है और मरती है, तो भी शोक नहीं करो क्योंकि ऐसा तो जरूर होगा ही। तू कुछ कर नहीं सकता। जो पैदा होगा वो मरेगा जरूर और जो मरेगा वो पैदा होगा, ये कानून है, फिर शोक क्यों करें। प्राणी जन्म से पहले अप्रगट है फिर बाद में भी अप्रगट है, (अदृश्य) बीच में प्रगट है फिर शोक क्यों करे। कोई तो आत्मा को उसको आश्चर्यवत् देखता है कोई वर्णन करता हैं, कोई सुनता है, कोई सुन के फिर नहीं जानता है। तुम युद्ध न भी करना चाहो तो भी तुम्हारा क्षत्रिय धर्म तुमसे करवाएगा। जो बगैर मांगे मिला है, ये धर्म युद्ध है, जो स्वर्ग देने वाला है। तुम युद्ध नहीं करेगा तो तुम्हारी निन्दा होगी, तुम पाप को प्राप्त करेगा और ऐसी निन्दा से तो मरना अच्छा है। जिन्होने तुमको इज्जत दी है वो ही तुम्हारी निन्दा करेंगे कि युद्ध से भाग गया, युद्ध में मरेगा तो भी स्वर्ग मिलेगा अगर जीतेगा तो राज्य मिलेगा। दुःख–सुख, मान–अपमान, लाभ–हानि को समान समझके युद्ध करो तो पाप को प्राप्त नहीं करेगा।

श्लोक 39 से 45

ये तुम को ज्ञान योग बताया अभी कर्म योग सुन कि बंधन कैसे छूटे ? कर्म योग में बीज का नाश नहीं होता और थोड़ा भी कर्म योग का साधन जन्म मरण के महान डर से बचाने वाला है, निष्कामी की एक ही निश्चयात्मक बुद्धि है पर सकामी कर्मों में फंसे हुये की बुद्धियां अनेक है। कर्म योग सिखाता है कि तुम निष्कामी बन के फल की इच्छा छोड दो। पर कर्म कांड वाले वेद वादी समझते हैं स्वर्ग मुक्ति से ऊँचा है। स्वर्ग के भोगों को पाने के लिये मीठे वचन

फूलों के जैसे बोलते हैं (रोचक वचन)। ऐसे अविवेकी पुरुषों की बुद्धि स्थिर नहीं है। तीन गुणों का वर्णन वेदों में है, पर तुम तीनों गुणों से न्यारा बनो। योग क्षेम को न चाहने वाला हर्ष–शोक से न्यारा माया को जमा करना छोड़ दुख–सुख से परे अपनी आत्मा में आबाद रहो, स्वाधीन अन्तःकरण वाला बनो। (अन्तःकरण को जीत) जो वेदों में है वो ज्ञानी को अपने अन्दर आत्मा में मिलता है।

श्लोक 46 से 53

भरपूर हो जाने के बाद नदी और तालाबों से मनुष्य का मतलब नहीं है। जिसको बड़ा समुद्र मिल जाये तो उस को छोटे तालाबों से वास्ता नहीं रहता वैसे ही ब्रह्म के प्राप्त होने पर वेदों की जरूरत नहीं है। तू कर्म कर पर फल की इच्छा छोड़ के आसक्ति को त्याग के फायदा नुकसान दोनों को समान समझ के समता योग में रहो, समान बुद्धि में रहो, दुख–सुख को एक समझ, तो पाप पुण्य से छूटेगा ! हर कर्म में ज्ञान रखो ये योग है। निर्विकार परम पद को प्राप्त होगा, मोह में फंसी हुई तुम्हारी बुद्धि जब मोह से बाहर निकलेगी तब सुना हुआ औरसुनने योग्य से बेपरवाह होगा। शास्त्रों सिद्धान्तों में उलझी हुई तेरी बुद्धि तब स्थिर होगी, समता योग में जब तू आयेगा।

श्लोक 54 से 58

अर्जुन ने प्रश्न पूछा कि स्थिर प्रज्ञ व्यक्ति के क्या लक्षण हैं ? वो कैसे चलता है ? बात कैसे करता है ? और उसकी कौन सी निशानी है?

कृष्ण ने कहा, " जो सब इच्छा त्यागे, जो आत्मा से आत्मा में तृप्त है, वो ही स्थिर बुद्धि वाला ज्ञान योगी है। सुख–दुख, डर क्रोध को छोड़ के मोह के बिना शुभ अशुभ में खुश या दुखी नहीं हो। जैसे कछुआ अपने अंग समेटता है वैसे ही अपनी इंद्रियों को समेटके अपनी आत्मा से आत्मा में संतुष्ट रहने वाला स्थिर बुद्धि है।"

श्लोक 59

शरीर को बाहर के विषयों से दूर रखने पर भी मन से रस नहीं जाते हैं किन्तु स्थिर बुद्धि वाला परम पद में रह के मन से तृष्णा को निकाल बाहर करता है।

श्लोक 60 से 67

इन्द्रियां जबरदस्त है सयाने यत्न करते हैं तो भी मन के अन्दर लहरें उठती हैं पर जो मन इंद्रियों को वश करके आत्मा में लिवलीन है वो ही योगी ज्ञानी स्थिर बुद्धि वाला है। विषयों के चिन्तन करने वालों की मन में आसक्ति होती है, उस में कामना उत्पन्न होती है अगर कामना पूरी होने में विघ्न पड़ता है, तो क्रोध उत्पन्न होता है क्रोध से फिर मूर्खता होती है उससे बुद्धि मतलब ज्ञान शक्ति नाश होती है फिर अपना आप भूल जाता है, इन्सान मुर्दे की तरह हो जाता है। प्रकृति को जो वश में रखे, मोह द्वेष से जो दूर रहे, जो इंद्रियों के विषयों के बीच में रहकर भी चित्त शान्त रखे वो ही सच्चा योगी है। मनमुख की बुद्धि स्थिर नहीं है, निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है उसका ध्यान नहीं लगता, शान्ति भी नहीं है सच्चा सुख भी उसको नहीं मिलता है। हवा जैसे नाव को जल में यहाँ वहाँ करती है वैसे इंद्रियों के पीछे दौड़ने वाला मन बुद्धि का नाश करता है। बुद्धि में स्थिरता को आने नहीं देता।

श्लोक 68 से 72

एक एक इंद्री विषयों से रोककर जिस ने वश में की है, वो ही आत्मा में है स्थिर बुद्धि में वो ही है।

स्थिर प्रज्ञ राग द्वेष से रहित, अगर विषयों में विचरण भी करता है तो भी अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त करता है। अन्तःकरण की प्रसन्नता से सारे दुख नाश हो जाते है इस लिये योगी की बुद्धि स्थिर रहती है जहाँ अज्ञानी जन की रात है वहाँ ज्ञान स्वरूप में

नित्य परमानन्द की प्राप्ति में स्थित प्रज्ञ योगी जागता है, और जहाँ नाशवंत सुखों में अज्ञानी जागता है वहाँ परमात्मा के तत्व को जानने वाले के लिये रात है। जैसे अनेक प्रकार की नदियाँ सब तरफ से परिपूर्ण समुंदर में समा जाती है, बिना हलचल के, वैसे ही सारे भोग स्थित प्रज्ञ पुरूष में विकार पैदा करने के सिवाय उसमें समा जाते हैं निष्काम स्थिर बुद्धि वाला काम काज सब में शान्ती में रहता है। जो कामनाओं को त्याग कर ममता रहित, अंहकार रहित होकर विचरण करता है, वो अन्त काल में भी उस में रह कर निर्वाण पद को प्राप्त करता है।

अध्याय तीसरा-कर्मयोग

श्लोक 1 से 3

अर्जुन ने पूछा "हे भगवान अगर आप कर्मों से ज्ञान को उत्तम समझते हों, तो फिर मेरे को घोर कर्मों में क्यों डालते हो। तुम्हारे मिले हुये से वचन मेरी बुद्धि को उलझाते हैं इसलिये एक बात कहे अर्थात मेरी भलाई हो। भगवान ने कहा "इस लोक में दो तरह का निश्चय कहा गया है, एक सांख्य योग अर्थात् ज्ञान से निश्चय, दूसरा कर्मयोग अर्थात कर्म से निश्चय।"

श्लोक 4 से 8

कर्म छोड़ने से निष्कामी नहीं बनते है न हीं मुक्ति मिलती है, कर्मों में कर्तामान के अभिमान करने से कभी भी ज्ञान का निश्चय नहीं होगा, और न छोड़ने से ही कर्म योगी होगा। सच तो यह है कि कर्म करने के सिवाय कोई भी मनुष्य एक पल भी नहीं रह सकता प्रकृति उससे कर्म जरूर करायेगी, जो बाहर मन इन्द्रियों को रोक के अन्दर विषयों का चिन्तन करता है वो मिथ्याचारी, पाखंडी, ढोंगी है। पर जो मन से इंद्रियों को वश में रख के विषयों की आसक्ति छोड़कर निष्काम कर्म में लगा पड़ा है वो ही सच्चा कर्म योगी है, शरीर का निर्वाह भी कर्म के बिना नहीं हो सकेगा।

श्लोक 9 से 13

यज्ञ मतलब कि सारी सृष्टि एक यज्ञ है उसमें जो भी कर्म मनुष्य को दिया हुआ है वो उसके लिये जरूरी है। निष्काम कर्म के सिवा दूसरे सकामी कर्म बन्धन में डालने वाले हैं आसक्ति के बिना यज्ञ के निमित्त कर्म कर। प्रजापति ब्रह्मा ने यज्ञ रचकर कहा कि आप देवताओं की सेवा करेंगे, तो देवता आप की सेवा करेंगे। बगैर मांगे भोग देंगे, पर जो बगैर देने के भोगेगा वो चोर है। यज्ञ से बचा अन्न खाने वाला सभी पापों से मुक्त होता है। जो केवल अपने लिये पकाता है वो पापी है।

श्लोक 14 से 19

वर्षा से अन्न आता है उससे जीव उत्पन्न होता है। वर्षा आती है यज्ञ से। यज्ञ होता है कर्मों से। कर्म होता है, प्रकृति से। भगवान ने अन्न पैदा किया, उसी सारे यज्ञ में भगवान ही समाया है। यज्ञ में जो सेवा नहीं करता वो जन्म बेकार में गँवाता है।

जो भोगों में पड़ा है सेवा नहीं करता वो अपना जन्म असफल करता है, पर जो आत्म रमण करता है आत्मा में तृप्त है उसके लिये कोई भी कर्म जरूरी नहीं है वो करे या नही करे, है स्वार्थ के सिवाय। तुम मोह इच्छा छोड़कर कर्म करते रहो तो मोक्ष मिलेगा।

श्लोक 20 से 26

जनक आदि राजाओं ने भी निष्काम सेवा करके परम पद को प्राप्त किया। दुनिया दुखी है तू उन की सेवा कर। ज्ञानी लोक संग्रह के लिए कर्म करता है, दूसरे उसकी रहणी का मिसाल देख के पैरवी (उस के जैसे) करेंगे नहीं तो सुस्त बन जायेंगे, मेरे को तीनों लोकों में कुछ नहीं करना, तो भी मेरा जीवन लोगों के कल्याण के लिये है। मैं अगर अपने कर्म में अच्छी तरह व्यस्त नहीं रहूं तो दुनियां के लोग तो सुस्त हो जायेंगे, भ्रष्ट हो जायेंगे और कहेंगे हम भी कुछ नहीं करेंगे। ऐसे लोग उलट–पुलट हो जायेंगे मेरे को देख के ज्ञानी कर्म करता है। लोगों के कल्याण के लिये। ज्ञानी मूर्खों और अज्ञानियों को उलझाता नहीं है पर निष्काम कर्म करके उनको कर्मों में व्यस्त रखता है। किसी भी कर्म में अश्रद्धा उत्पन्न करके कर्मों में नहीं डालता। मूर्ख वो है जो अभिमानी कहता है कि मैं करता हूँ।

श्लोक 27 से 35

सब कर्म प्रकृति के गुणों से हो रहे है जो समझता है कि गुण अपने आप गुणों में वर्तते हैं और उन में मोह नहीं रखता है तो ज्ञानी है। अज्ञानी कर्मों में मोहित हैं पर ज्ञानी उन में उलझता नहीं है।

हे अर्जुन फल की इच्छा छोड़ कर सभी कर्म मेरे को अर्पण करो, आशा और ममता रहित होके युद्ध करो। जो श्रद्धा से अहंकार को छोड़कर इस सच्ची शिक्षा पर चलते हैं वो कर्मों के बन्धन से छूट जाते हैं पर जो दोष दृष्टि वाले मेरे मत के अनुसार नहीं चलते वो मूर्ख अज्ञानी नाश हो जाते हैं। सभी जीव अपने स्वभाव से चलते हैं उनके साथ हठ नहीं करो, ज्ञानी भी अपने स्वभाव से चलता है। राग द्वेष इंद्रियों में है तू दोनों से दूर रह। दोनों शत्रु हैं। कल्याण में विघ्न डालने वाले है। दूसरे का धर्म भले उत्तम हो और अपना धर्म गुण रहित हो तो भी अपने धर्म में मरना बेहतर है। दूसरे का धर्म डर देने वाला है।

श्लोक 36 से 73

अर्जुन ने कहा, "न चाहते हुये भी मनुष्य बेबस होकर पाप करने के लिये खिंच के क्यों जाता है ? भगवान ने कहा, "ये काम ही क्रोध है, जो रजो गुण से उत्पन्न हुआ है। इनसे तृप्ति नहीं होने वाली है, तेरी इच्छा ही है जो पाप करा रही है और ज्ञान को ढक देती है जैसे अग्नि को धुँआ, मिट्टी शीशे को, गर्भ में बच्चा छुपा हुआ है वैसे ज्ञान को काम ढक देता है, मन बुद्धि और इंद्रियों में काम का वासा है। ज्ञान को ढक के बुद्धि को उलझा देता है उस काम को तू बहादुर हो के मारो। इन्द्रियों से ऊपर मन है, मन से ऊपर बुद्धि, बुद्धि से ऊपर है सूक्ष्म आत्मा। ज्ञान से मन को काबू करके काम रूपी दुश्मन को मारो।

अध्याय चौथा-ज्ञान कर्म, सन्यास योग

श्लोक 1 से 4

ये ज्ञान कर्म योग पुरातन सनातन है, पहले से चलता आ रहा हैं मैंने ये अविनाशी योग सूर्य को सुनाया, सूर्य ने मनु को सुनाया, मनु ने इक्ष्वाकू को सुनाया फिर उस के बाद कितने समय तक योग पृथ्वी से गायब हो गया। तू मेरा परम् प्यारा भगत है इसीलिये उत्तम योग तुम को सुनाता हूँ। अर्जुन ने कहा तुम्हारा जन्म तो अभी हुआ पर सूर्य तो पहले ही था फिर कैसे समझूँ कि पहले से ही तुम ने ये कहा है''।

श्लोक 5 से 10

भगवान ने कहा :– तेरे मेरे जन्म बहुत हुए हैं उनका तू नहीं जानता पर मैं जानता हूँ। मैं अजन्मा, अविनाशी ईश्वर होते हुये भी अपनी प्रकृति के अधीन हो के योग माया से प्रगट होता हूँ, जब–जब धर्म की हानि होती है, पाप बढ़ता है, तभी मैं साधु पुरूषों, भक्तों के सुधार के लिये, पाप को नाश करने के लिये धर्म की रक्षा करने के लिये युग युग में प्रगट होता हूँ। मेरा जन्म दिव्य मेरा कर्म दिव्य है जो ऐसे जानता है वो फिर जन्म मरण में नहीं आता। पहले भी कितने भक्तों ने विकारों को वश करके ज्ञान और तपस्या से मेरे स्वरूप को प्राप्त किया है। अन्नय प्रेम से लगातार चिन्तन करते आसक्ति रहित होकर संसार में चलता है वो ही तत्व सहित मुझे जानता है।

श्लोक 11 से 12

जिस तरह से भक्त भजते हैं। मैं उनको वैसे ही भजता हूँ। जिस तरह से शरण लेते हैं, वैसे ही उनकी सेवा करता हूँ। हर एक मार्ग में मैं ही उनको बढ़ाता हूँ। कर्म फल को चाहने वाले देवताओं को पूजते हैं, उनकी इच्छाएँ भी पूरी होती हैं।

श्लोक 13 से 19

गुण और कर्म के मुताबिक चार वर्ण भी मेरे द्वारा ही रचे गये हैं (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र) परन्तु सृष्टि की रचना करते हुये भी मैं अकर्ता हूँ। क्योकि फल की आसक्ति नहीं हैं, न ही कर्म का फल मेरे को लगता है। ऐसे जो मुझे तत्व से जानता है वो कर्मों के बंधन में नहीं बधता। मुक्ति की चाहना वाले मोह इच्छा त्याग कर कर्म करते हैं, तू भी अर्जुन ऐसे कर। कर्म क्या है, अकर्म क्या है, ये भेद होशियार भी नहीं समझ सके हैं, मैं पूरा सार तुम को बताता हूँ। कर्म, विकर्म और अकर्म इन तीनों को समझना जरूरी है। कर्मों की गति गहन है। कोई कोई इस को जान सकता है। कर्म में अकर्म, अकर्म में कर्म जो देखता है वो ही योगी सभी कर्म करने वाला है। जिस के सभी कर्म बिना संकल्प के होने वाले, ज्ञान अग्नि में भस्म होने वाले, उनको सच्चा पंडित कहते हैं, वो ही बुद्धिमान, सच्चा ब्रह्म ज्ञानी बोलने में आता हैं। इच्छा छोड़ के सन्तुष्ट मन वाला, फल की इच्छा को त्याग के हमेशा अलेप (र्निलिप्त) रहता है, सच्चा योगी वो ही है।

श्लोक 20 से 33

कर्म करते हुये भी जो निर्लेप है, सभी भेद द्वन्द छोड़ के मन को वश में रख के संसार के पदार्थों को त्याग के सुख–दुख, द्वैत–द्वेष छोड़ के सिद्धि–असिद्धि में समान, ऐसा कर्म योगी, कर्म करते भी उन से बंधता नहीं है, वो सिर्फ यज्ञ के लिये कर्म करता है। जो समझता है कि सभी ब्रह्म है तो फल भी ब्रह्म ही मिलेगा। कितने देवता को पूजते हैं, कितने आत्मा को परमात्मा से मिला के अभेद दर्शन करते हैं, कितने सभी इंद्रियों को वश में रख के अग्नि में हवन करते हैं। कितने इंद्रियों की क्रियाओं को प्राणों के ज्ञान अग्नि से प्रकाश आत्म योग रूप में हवन करते हैं। कितने पैसों से यज्ञ करने वाले, तपस्या रूपी यज्ञ करने वाले, कितने योग रूपी यज्ञ करने

वाले, कोई अष्टांग योग और शास्त्र अभ्यास, कोई व्रत (उपवास) रखने वाले, कोई अहिंसा रूपी कठिन उपवास को धारण करके ज्ञान यज्ञ करने वाले, कितने अपान वायु को प्राण वायु में हवन करने वाले, कितने प्राण वायु को अपान वायु में, कितने थोड़ा खाना खाने वाले, कितने प्राणायाम करने वाले ये सभी साधक यज्ञ से पापों को नाश करते हैं। यज्ञ से उत्पन्न हुये अमृत रूपी परब्रह्म की प्राप्ति होती हैं। यज्ञ नहीं करने वाले पुरूषों के लिये लोक परलोक दोनों दुःखदायी हैं। ज्ञान से तू कर्मों का बंधन काट। धन के यज्ञ से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है। क्योंकि शुभ कर्मों के लिये ज्ञान ज्योति चाहिये । (ब्रह्म ज्ञानी आत्मा की अग्नि में ज्ञान यज्ञ से ही ब्रह्म को भजते हैं)।

श्लोक 34 से 42

ज्ञान को तू ज्ञानी के पास जाकर श्रद्धा से सेवा करके पा सकता है। मोह को छोड़ कर फिर अपने में और मेरे में और जगत में वो ही ज्योति देखोगे। कैसा भी तू महापापी होगा तो भी ज्ञान के तुरहे पर चढ़ने से पार हो जायेगा। ज्ञान अग्नि सभी कर्मों को जलाती है, जैसे आग लकड़ियों को जलाती है। ज्ञान के जैसी पवित्र चीज और कोई संसार में नहीं हैं। श्रद्धावान इंद्रियों को जीत कर ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करता है। श्रद्धा के सिवाय अज्ञानी–संशय करने वाला नाश होता है। संशय वाले के लिए न ही इस लोक में न परलोक में उसके लिये कोई सुख है ।

समानता योग से जिस ने फल की इच्छा छोड़ दी, मन के भ्रम दूर कर दिये, वो ज्ञान प्राप्त करके कर्म बंधन से छूट गया।

हे अर्जुन! ज्ञान की तलवार से तू भ्रम और मोह को काट और उठ के युद्ध करो, निष्कामी होकर अन्दर आत्म बल रख कर लड़ाई करो।

अध्याय पाँचवां-कर्म सन्यास योग

श्लोक 1 से 7

अर्जुन ने कहा :– हे कृष्ण आपने कर्म योग और कर्म सन्यास दोनों की तारीफ (सराहना) की, इन दोनों में से कल्याणकारी क्या है ? अच्छी तरह समझाओ।

कृष्ण ने कहा :– दोनों कल्याणकारी हैं। पर कर्म सन्यास से कर्म योग ज्यादा कल्याणकारी है और साधन में भी सरल और श्रेष्ठ है । जो मनुष्य, वैर विरोध और कामनाओं से दूर है, वो सच्चा सन्यासी है, सुख दुख द्वेष छोड़के बंधन की फॉसी को काटता है। ज्ञान योग से जो परम् धाम प्राप्त होता है वो कर्म योग से ही प्राप्त होता है, दोनों का फल एक जैसा है पर कर्म योग बगैर सन्यास मतलब, मन इंद्रियों शरीर से किये हुये कर्मों में कर्तापने का त्याग कठिन है। पर कर्म योगी जल्दी परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करता है। अज्ञानी ज्ञान और कर्म सन्यास और निष्काम को अलग अलग समझते हैं। पर ज्ञानी ऐसे नहीं समझते जो एक में पक्का है वो दोनों का फल पाता है। ज्ञान योगी ज्ञान में, कर्म योगी निष्काम में एक जैसे हैं ।

श्लोक 8 से 13

जिसका मन वश में है, इंद्रियों पे जीत पाली है, सब की आत्मा को अपना आप समझ के निष्काम कर्म योगी निर्लेप रहता है । वो सुनते, देखते, खाते, ऑखें खोलते, बंद करते, सांस लेते–देते समझता है कि मैं कुछ नहीं करता, इंद्रियॉ अपने विषयों में वरत् रहीं है। जो सभी कर्म परमात्मा को अर्पण करके आसक्ति को त्याग के कर्म करता है वो कंवल के फूल की तरह न्यारा है ।

निष्कामी फल का त्याग करता है और शान्ति प्राप्त करता है । सकामी चित्त में चंचल, फल में फँसा हुआ, बंधन में है। संयमी

(संयम वाला) कर्म योगी शरीर में रह कर भी निर्लेप है । ज्ञान योगी न करता है, न कराता है, साक्षी है ।

शलोक 14 से 16

कर्म और फल का संयोग प्रकृति का खेल है जैसी करनी वैसी भरनी, इस में ईश्वर का दोष नहीं है। ईश्वर तो पाप पुण्य से न्यारा है, पर अज्ञान, ज्ञान को ढक के मोह में फँसाता है। अज्ञान के कारण ज्ञान का नाश होता है। पर ज्ञान रूपी सूर्य सच्चिदानन्द घन परमात्मा को प्रकाशित कर देता है।

शलोक 17 से 21

ज्ञान लेकर जो आत्मा का ध्यान करता है वो सभी पापों से मुक्त होता है। आत्मा में लिवलीन हो के स्थिर होता है, वो मरता नहीं है, सच्चा ज्ञानी ब्राम्ह्ण, हाथी, गाय, कुत्ता, चांडाल में एक ही आत्मा देखता है। जिसका मन एकता में हैं वो जीवन मुक्त है, उसने ब्रह्म निरंकारी , सच्चिदानंद, स्वरूप का रस पिया है । जो पसंद आने वाले पदार्थों में खुश नहीं होता , और पसंद न आने वालों से दुखी नहीं होता वो स्थिर बुद्धि वाला मोह रहित ब्रह्म को जान के ब्रह्म में रहता है । जो विषयों में मन नहीं रखता, अन्तर्मुखी है उस को अखुट आनंद मिलता है, वो ब्रह्म में समाया हुआ है।

शलोक 22 से 29

विषय भोगों से अन्त में रोग पैदा होते हैं, ज्ञानी इसीलिये विषयों से संग नहीं करता। मरने से पहले जिसने काम–क्रोध के वेग को वश (काबू) में किया है, वो आत्मा में रहने वाला, अजर आत्मा में सुख वाला आत्मा में तृप्त रहने वाला, सबकी भलाई वाला, परमात्मा में स्थित है।

जिस के सभी शक, भ्रम, गुमान, पाप, नाश हुये हैं, जिसके काम–क्रोध चले गये हैं, जिसने अपने को पहचान के चित्त को वश में किया है वो ही आनंद रूप दुख रहित ब्रह्म निर्वाण पद में है। कितने विषय–भोगों से मन निकाल के प्राणायाम से मोक्ष को प्राप्त करते है । मेरे को जो सर्व लोको को महेश्वर जानता है सभी का भला करने वाला समझता है वो ही शान्ति पद को प्राप्त करता है।

अध्याय छठा-ध्यान योग

श्लोक 1 से 10

सिर्फ अग्नि को त्यागने वाला या बाहर की क्रियाएं छोड़ने वाला जिसके संकल्प नहीं त्यागे हुये हैं वो योगी नहीं है, पर जो कर्म फल, इच्छा छोड़ के निष्काम कर्म करता है वो सच्चा सन्यासी योगी है। न तो इंद्रियों के भोगों में, न ही कर्मों में उसकी आसक्ति है, सर्व संकल्प का त्यागी योग में आरूढ़ होता है। जिसने इंद्रियों सहित शरीर को जीता है वो खुद अपना शत्रु है, हर एक खुद अपना उद्धार करे। बुरी गत नहीं करे। अगर आत्मा से दूर है तो अपना दुश्मन है। जो ज्ञान और अनुभव में तृप्त है वो सर्दी–गर्मी, दुख–सुख, मान–अपमान में न्यारा रहता है। उसके लिये मिट्टी, पत्थर, सोना सभी एक समान हैं वो हमेशा ईश्वर में मग्न है दोस्त–दुश्मन, अपना–पराया, पापी–धर्मात्मा सभी में समान भाव रखता है मन और इंद्रियों के सहित शरीर वश में रख के आशा सहित अकेला एकांत में स्थिर होके आत्मा को परमात्मा में लगाता है।

श्लोक 11 से 15

शुद्ध भूमि में निर्मल आसन बनाकर मृगशाला बिछाकर, न बहुत ऊँचा न बहुत नीचे इंद्रियों को वश में रख के मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योगाभ्यास करके शरीर में समान और अचल रहके नाक के अग्र भाग को एक टक देख के ब्रह्मचर्य व्रत रख के, डर रहित, शान्त अन्तःकरण वाला, सावधान योगी–मन को रोक के मेरे में चित रख के, मेरे परायण हो के रहता है। मन वश किया हुआ ऐसा योगी आत्मा को लगातार परमात्मा स्वरूप में लगा के शान्ति प्राप्त करता हैं।

श्लोक 16 से 26

ये योग न ज्यादा खाने से न उपवास करने से न ही, नहीं ज्यादा नींद से न ज्यादा जागने से, पर जो पूरा खाये पूरा सोयें सभी नियम पूरे हैं जिसके उसका योग सिद्ध होता है। जैसे हवा से ढकी जगह पर दीया चमकता है वैसे परमात्मा के ध्यान में लगे हुये की स्थिति पक्की है वो ही योगी आत्मा में स्थित है चित को अचल करके आत्मा में शान्ति प्राप्त करता है, आत्मा से आत्मा का दर्शन करके प्रसन्न होता है, इंद्रियों से दूर शुद्ध बुद्धि से अन्तः आनन्द की अवस्था प्राप्त करता है, नित सच्चा सुख प्राप्त करता है, आत्मा से उपर और कोई वस्तु नहीं समझता महा भारी दुख में भी आत्मा को नहीं भूलता है, ये दुख से छूटने वाला योग धीरज और उमंग वाले चित्त से निश्चय ही पूरण होता है। धीरे–धीरे दुनिया से चित्त को हटाके शान्ति में लाता है जहाँ–जहाँ ये चंचल मन दौड़ता है वहाँ से उसको रोक के वश में लाता है और परमात्मा में लगाता है

श्लोक 27 से 32

जिस का मन शान्त है पाप से दूर है ब्रह्म में लीन है वो आत्म सुख में है, सम भाव वाला सभी में एक आत्मा देखता है सभी जीवों को अपने अन्दर आत्मा में देखता है मेरे को हर जगह हर चीज में मेरा ही इसरार (दीदार) दिखता है उससे मैं अलग नहीं हूँ जो वासुदेव सभी में देखता है वो व्यवहार वृत्ति में अपने को मेरे में देखता है, सभी को अपने जैसा देखता है और अपने जैसा समझता है और प्यार करता है उन का सुख–दुख अपना करके समझता है वो ही योगी उत्तम है।

श्लोक 33 से 47

अर्जुन ने पूछा, हे भगवान! मन बहुत चँचल है हवा से भी तेज है टेड़ा और ताकत वाला है उसे कैसे रोकें ?

कृष्ण "हे वीर अर्जुन, ये सच है कि मन को वश करना बड़ा कठिन है पर वैराग्य से वो भी वश किया जा सकता है, अगर मन वश नहीं होगा तो परमात्मा से योग भी नहीं लग सकेगा, पर अभ्यास और पुरूषार्थ से मन को वश करके इस योग को पा सकते हैं।

अर्जुन ने पूछा, "भगवान जिस की श्रद्धा है पर यत्न में ढीला है योग लगाने में निष्फल है वो कौन सी गति को प्राप्त करता है योग भ्रष्ट होके भटक के वो कहाँ निवास करता है, उसका नाश तो नहीं होता है ?"

कृष्ण–कल्याण मार्ग में जो चलते हैं उन के लिये दुर्गति बिल्कुल नहीं है, इस लोक चाहे परलोक में उस का नाश नहीं होता। योग भ्रष्ट को दूसरा जन्म अच्छे घर में या ज्ञानी के या योगी के घर में मनुष्य रूप में मिलता है, पर ऐसा जन्म भी किसी–किसी को मिलता है। पिछले जन्म की बुद्धि (पुरुषार्थ) उस के पास है, बाकी अभी आके मोक्ष के लिये कदम बढ़ाता है और कर्म कांडियों से बड़ा पद पाता है। वो अथक होके पुरूषार्थ करता है और परम गति को प्राप्त करता है। तपस्वी, पंडित और सकामी कर्म कांडियों से भी वो योगी ऊपर है। जो अपना मन मेरे में रख के श्रद्धा से मेरे को भजते हैं, उन को मैं परम श्रेष्ठ योगी समझता हूँ।

ध्यान योग वाला छठा अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय सातवाँ-ज्ञान योग

श्लोक 1 से 3

उस के बाद श्री कृष्ण ने कहा, "हे अर्जुन! तू मेरे में अनन्त प्रेम से आसक्ति मन आनन्द भाव से मेरे परायण होकर योग में लगे हुये, सम्पूर्ण विभूति बल ईश्वरीय आदि गुणों से भरा सब का आत्मरूप होकर मुझे कैसे पहचानो वो सुनों। ऐसा तत्व ज्ञान तुम को सुनाता हूँ जिस को जानने के बाद संसार में कुछ और जानने के योग्य नहीं रहता, पर हजारों मनुष्यों में कोई विरला मनुष्य मेरी प्राप्ति के लिये कोशिश करता है और उन कोशिश करने वाले योगियों में से कोई विरला ही तत्व से मेरे को जानता है।

श्लोक 4 से 7

हे अर्जुन ! पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा, आकाश, मन, बुद्धि और अंहकार आठ प्रकार की प्रकृति संसार में है। वो आठ प्रकार की प्रकृति मेरी जड़ प्रकृति है। हे महाबाहू उसके सिवा दूसरी जीव रूप परा मतलब चेतन प्रकृति जान, जिससे सारा जगत धारण किया हुआ है और हे अर्जुन ऐसा जान कि सब भूत प्राणी दोनों प्रकृति से पैदा होते हैं सारे जगत की उत्पति प्रलय मैं ही तो हूँ। सारे जगत का मूल कारण हूँ इसीलिए हे अर्जुन! मेरे सिवाय और कोई वस्तु नहीं है ये सारा जगत मेरे से ही पिरोया हुआ है। जैसे सूत्र में सूत्र की मणियां।

श्लोक 8 से 11

हे अर्जुन! जल में रस मैं ही हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में, प्रकाश मैं ही हूँ, सभी वेदों में ऊँकार मैं ही हूँ, आकाश में शब्द और पुरुष में पुरूषतत्व मैं ही हूँ। पृथ्वी में गँध, अग्नि में तेज हूँ, सभी भूत प्राणियों का जीवन हूँ, तपस्वियों में तप हूँ। हे अर्जुन ! सभी भूत प्राणियों का

आदि कारण मेरे को जान मैं बुद्धिवानों में बुद्धि और तेजस्वीयों में तेज हूँ। हे अर्जुन! बलवानों का बिना मोह और कामना रहित बल मैं ही तो हूँ। धर्म अनुसार, शास्त्रों अनुसार काम भी मैं ही तो हूँ।

श्लोक 12 से 15

सतो रजो तमो भावनाओं में मेरे को ही जानो पर मैं उनमें फँसा हुआ नहीं हूँ, मैं तीन गुणों में नहीं हूँ। तीनों गुणों के कार्यों में सतो रजो तमो तीनों प्रकार के भावों मतलब राग द्वेष आदि विकारों में सारा जगत विषयों में मोहित हो रहा है। इसीलिए इन तीन गुणों से दूर (न्यारा) मुझ अविनाशी को तत्व से नहीं जानते क्योंकि ये अलौकिक अति अद्भुत त्रिगुणी मेरी योग माया से बचना बहुत मुश्किल है पर जो मनुष्य लगातार मेरे को ही याद करता है मेरे में ही मन रखता है वो माया से पार हो जाता है। ऐसा आसान उपाय होते हुये भी माया में फँसे अविवेकी आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कुकर्मी, नीच, मूढ़ प्राणी मेरे को नहीं जानते।

श्लोक 16 से 19

हे श्रेष्ठ अर्जुन! चार प्रकार के भगत मेरे को भजते हैं पहले अर्थार्थी–संसारी कामनाओं के लिये, दूसरे–दुखी अपने कष्ट दूर करने के लिये, तीसरे जिज्ञासु मेरे यथार्थ रूप को पहचानने की इच्छा वाले, चौथे ज्ञानी–मतलब निष्कामी। इन में सम्भाव आनन्द प्रेम भक्ति रखने वाले ज्ञानी भक्त ही मेरे को परम् प्यारे हैं क्योंकि तत्व सहित जानने वाले ज्ञानी को मैं अति प्रिय हूँ, और ज्ञानी मेरे को अति प्रिय है जबकि सभी भक्त श्रेष्ठ हैं क्योंकि श्रद्धा सहित मेरे को भजते हैं। पर ज्ञानी तो मेरा ही रूप है। ये मेरा मत है क्योंकि ज्ञानी मेरे में ही निवास करता है। बहुत जन्मों के बाद इस ब्रह्म ज्ञान को

प्राप्त करके वसुदेव सर्वत्र है, वासुदेव के सिवाय और कुछ नहीं है ऐसे जानने वाला अति दुर्लभ महात्मा है।

श्लोक 20 से 25

हे अर्जुन! जो विषयों में आसक्त पुरूष है, वो ज्ञान को भुलाके भोगों की कामना से देवताओं की पूजा लोंकों के अनुसार करते हैं, नियम की पालना करते हैं। सकामी भगत जिस–जिस देवता में श्रद्धा रखते हैं उस में ही मैं उनकी श्रद्धा स्थित करता हूँ। श्रद्धा से जिस देवता की पूजा करता है, उस देवता की तरफ से मैं ही मनोकामना पूरी करता हूँ। पर ये अल्प बुद्धि वाले नाशवान फल प्राप्त करते हैं देवाताओं की पूजा करने वाला देवता को पाते हैं। पर भगत चाहे कैसे भी याद करे मेरे को ही हासिल करते हैं। ऐसे होते हुये भी सभी प्राणी मेरा ध्यान भजन नहीं करते क्योंकि मूर्ख मनुष्य मेरे अनूप, उत्तम, अविनाशी रूप को नहीं पहचानते कि मैं अजन्मा और अपनी माया से प्रगट हुआ हूँ, ऐसे मेरे तत्व को नहीं पहचान के मन इंद्रियों से दूर मुझ सचिदानन्दघन परमात्मा को साधारण मनुष्य जैसे पैदा हुआ समझ के साधारण मनुष्य समझते हैं। और मैं अपनी योग माया से छुपा सब को जानने में नहीं आता इसीलिये अज्ञानी मनुष्य मैं अजन्मा अविनाशी परमात्मा को तत्व सहित नहीं जानते मतलब पैदा होने वाला और मरने वाला समझते हैं।

श्लोक 26 से 30

हे अर्जुन! पहले गुजरे हुये, अभी स्थित (वर्तमान में मौजूद) और आने वाले जीव सभी भूतों को मैं जानता हूँ पर श्रद्धा भक्ति रहित पुरूष मेरे को नहीं जानते।

हे अर्जुन! संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न होने वाले दुख सुख आदि द्वंद रूपी मोह में सभी प्राणी फँसे हुये अति अज्ञानी हैं, पर

निष्काम भाव से श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने वाले पाप द्वेष छोड़ के राग द्वेष मोह आदि से मुक्त दृढ़ बुद्धि वाला पुरूष सिर्फ मेरे को ही भजता है। और जो मेरा आसरा या शरण ले के बुढ़ापा मौत से छूटने का यत्न करते हैं वो ही पुरूष ब्रह्म ज्ञान, आत्म ज्ञान और कर्मों से छूटने का रास्ता साफ जानते हैं। जो पुरूष अधिभूत, अधिदेविक, अधियज्ञ सहित सब का आत्म रूप मेरे को जानता है, जैसे भाप, बादल, धुँआ, पानी, बर्फ सभी जल के ही रूप हैं वैसे ही अधिभूत अधिदैविक और अधियज्ञ आदि सब कुछ वासुदेव रूप ही हैं ऐसे जो जानता है वो स्थिर चित्त वाला अन्त समय में मेरे को ही प्राप्त होता है मुझ तक पहुँचता है।

ज्ञान–योग वाला सातवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय आठवाँ-अक्षर ब्रह्म वाला योग

श्लोक 1 से 3

भगवान के वचनों को न समझ के अर्जुन ने पूछा हे पुरूषोत्तम ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म क्या है ? कर्म क्या है ? अधिदैव और अधिभूत किस को कहते हैं ? इस के सिवाय अधियज्ञ कौन है और वो मन और शरीर में कैसे और कहाँ रहता है और जिसने मन को वश में किया है अन्त समय में आप उसे किस प्रकार जानने में आते हैं ?

कृष्ण ने कहा, "हे अर्जुन! परम् अक्षर सबसे उत्तम जिस का कभी नाश नहीं होता ऐसा सच्चिदानन्द धन परमात्मा 'ब्रह्म' है और हर चीज से जो न्यारा है जीव आत्मा उसे 'अध्यात्म' कहते हैं और सृष्टि के व्यवहार को जो अर्पण करता है उसको 'कर्म' कहते हैं।

श्लोक 4 से 5

उत्पन्न और नाशवंत पदार्थ अधिभूत है और हिरण्यमय पुरूष अधिदेव (ब्रह्मा) है। हे अर्जुन! इस शरीर में वासुदेव विष्णु रूप अधियज्ञ है। जो मनुष्य अन्तकाल में मेरे ही सिमरन में देह का त्याग करता है वो मेरा ही साक्षात रूप है इसमें कोई भी शक नहीं है।

श्लोक 6 से 13

हे अर्जुन ये मनुष्य अन्तकाल में जिस–जिस भाव में चिन्तन में शरीर त्यागता है उस को ही प्राप्त होता है नहीं तो जिस रूप को याद करता है मरने के समय वो ही एक याद है। इसीलिये हे अर्जुन हमेशा मेरे को याद कर और युद्ध कर, मन बुद्धि मेरे को अर्पण करो तो मेरे को ही प्राप्त होगा। जिस का चित योग अभ्यास में स्थिर है दूसरी तरफ नहीं भटकता है वो एकाग्र मन से चिंतन करता है तो ईश्वर उस परम पुरूष में दिखता है (चमकता है)। जो पुरूष सर्वज्ञ,

अनादि, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म सब को पालने वाला, अगम रूप, सूर्य समान नित्य चेतन प्रकाश रूप अविद्या से दूर शुद्ध, सत्चित आनन्द परमेश्वर को भजता है वो भक्ति वाला मनुष्य अन्त काल में योग बल से प्राणों को मस्तक में स्थिर निश्चल मन से भज के उस दिव्य रूप परम पुरूष परमात्मा को प्राप्त होता है। वेदों को जानने वाले विद्वान जिस सत्चित आनन्द परम पद को अविनाशी कहते हैं, आसक्ति रहित मुनि महात्मा जिस परम पद को चाहने वाले ब्रह्मचर्य में रहते हैं उस परम पद को मैं तेरे लिए वर्णन करता हूँ विषयों से जो इंद्रियों को हटाके, मन को हृदय में धारण करता है और जीते हुये मन से प्राणों को मस्तक में टिकाके समाधि में स्थित होके जो पुरूष ओम् अक्षर रूप ब्रह्म का उच्चारण करके उसके अर्थ रूपी ब्रह्म निर्गुण का चिन्तन करके शरीर का त्याग करता है वो पुरूष परम गति को प्राप्त होता है।

श्लोक 14 से 16

जो मनुष्य अनन्य भाव से निरन्तर मुझ पुरूषोत्तम को भजता है उस त्यागी को समझो मैं प्राप्त हूँ। परम सिद्धि को प्राप्त करके महात्मा मेरे को प्राप्त करके इस फानी दुख के घर को और दूसरे जन्म को प्राप्त नहीं करता। सभी लोग ब्रह्मालोक से लेके जन्म मरण में आते हैं पर जिस ने मेरे को प्राप्त किया है वो फिर काल के चक्कर में नहीं आता क्योंकि मैं काल से दूर हूँ। और ये सब लोग काल के अधीन होने के कारण अनित्य हैं।

श्लोक 17 से 19

ब्रह्मा का एक दिन हजार युगों का और एक रात भी हजार युगों की है जो पुरूष ये तत्व सहित जानता है वो योगी समय के तत्व को जानता है।

योगी ये जानते हैं कि सारी सृष्टि जो देखने में आती है वो ब्रह्मा का दिन होने से उसके सूक्ष्म शरीर से पैदा होती है और रात होने पर ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर में लय होती है।

इस तरह रात को सृष्टि विलय होती है और दिन को उत्पन्न होती है ऐसे ब्रह्मा के सौ साल खत्म होने से लोगों के समेत ब्रह्मा भी शान्त हो जाता है।

श्लोक 20 से 22

वो सतचित आनन्द पूरण ब्रह्म परमात्मा सभी भूतों के नाश होने पर भी नाश नहीं होता। जो इस गुप्त भाव (अव्यक्त) में है उस को ही परम गति कहा गया है और जो सनातन गुप्त भाव को प्राप्त करके जन्म में नहीं आता वो ही मेरा परम् धाम है जिस परमात्मा के आधार पर सब भूत प्राणी है और जिस परमात्मा से ये सारा जगत व्याप्त है वो सनातन गुप्त परम अनन्य भक्ति से प्राप्त होगा।

श्लोक 23 से 28

जिस मार्ग में योगी देह त्यागके जो योगी जन्म लेते हैं और दूसरे जो जन्म नहीं लेते वो दोनों रास्ते बता रहा हूँ।

उत्रायण के छः महिने शुक्ल पक्ष में दिन के समय और अग्नि जलती हो उस समय जो शरीर छोड़े वो उपासक जिसने परमात्मा को परोक्ष भाव से जाना है वो ब्रह्म को प्राप्त करता है।

जब रात को धुँआ बिखरा हुआ हो कृष्ण पक्ष में और दक्षिण के छः महिने में जो सकाम कर्म योगी शरीर को त्याग के चन्द्र लोक को प्राप्त करके स्वर्ग में अपने शुभ कर्मों का फल प्राप्त करके फिर जन्म लेता है। ये दोनो मार्ग रोशनी और अंधेरा मतलब ज्ञान और अज्ञान। जो फिर जन्म में नहीं आता वो परम गति प्राप्त करता है और दूसरा

जो जन्म लेता है वो जन्म मरण में आता है। इन दोनों मार्गों, को जानके योगी मोहित नहीं होते, निष्काम भाव से साधन करके कामनाओं में नहीं फँसते इसी लिये हे अर्जुन ! तू सभी कालों में समत्व बुद्धि रूप योग से भरपूर होके हमेशा मेरी प्राप्ति के लिये साधन कर क्योंकि योगी पुरूष इस तत्व को जान के वेदों को पढ़ने से यज्ञ दान तप से जो फल मिलता है उन का उल्लंघन करके सनातन परम पद को प्राप्त करता है।

अध्याय नवां-राज विद्या राजयोग

श्लोक 1 से 34

1. श्री कृष्ण भगवान ने कहा हे अर्जुन! दोष दृष्टि के बगैर ये गुप्त ज्ञान सुनो जिस को जानने से तू दुख रूपी संसार से मुक्त हो जायेगा।

2. ये ज्ञान सभी विद्याओं में उत्तम राज विद्या गुप्त में गुप्त है और यह पवित्र, उत्तम, प्रत्यक्ष फल देने वाला धर्म युक्त है अभ्यास में भी सरल और अविनाशी है।

3. हे अर्जुन! तत्व ज्ञान में जिस को श्रद्धा नहीं है वो मेरे को नहीं मिलते और संसार के काल चक्कर में आते जाते हैं।

4. हे अर्जुन! मुझ सचिदानन्द धन परमात्मा से ये सारा जगत जल से बर्फ के जैसे परिपूर्ण है और सभी प्राणी मेरे आधार पे हैं पर मैं उन के आधार पर नहीं हूँ (मैं उनमें स्थित नहीं हूँ)।

5. ये सभी प्राणी मेरे में नहीं है, मेरी योग माया और प्रभाव को देखो सभी के पालन पोषण उत्पत्ति का आधार मैं हूँ वास्तव में आत्मा भूतों में स्थित नहीं हैं।

6. आकाश से पैदा हुई हवा सर्वत्र आकाश में ही स्थित है ऐसे ही मेरे संकल्प से पैदा (उत्पन्न) हुए सभी प्राणी मेरे में ही स्थित है।

7. हे अर्जुन! कल्प के अन्त में सभी प्राणी मेरी प्रकृति में मिलते हैं और उसी में लय होते हैं, और कल्प के आदि में मैं उन को रचता हूँ।

8. हे अर्जुन, त्रिगुणी माया के अधीन हुये स्वभाव के वश पराधीन प्राणियों को फिर कर्मों के अनुसार रचता हूँ।

9. आसक्ति रहित और न्यारा कर्ता भाव अंहकार रहित कर्म मुझ परमात्मा को बन्धन में नहीं बांधते। (निष्पक्ष, निर्लेप, उदासीन फल की इच्छा रहित है, गुण कर्मों अनुसार उत्पन्न पालन प्रलय चेष्टा होते भी आसक्ति रहित परमात्मा है।)

10. हे अर्जुन, मेरा आधार (सत्ता–स्फुरणा) ये माया सर्व जगत को रचती है और इस हेतु सारा संसार आवागमन के चक्कर में फिर रहा है।

11. सारी सृष्टि का महेश्वर मैं हूँ मूर्ख मेरे परम भाव को नहीं पहचानते। संसार के लिये मनुष्य रूप में रहते साधरण मनुष्य तुच्छ करके जानते हैं।

12. बेकार की आशा, बेकार के काम, अन्धी विद्या ले के मोह में रहते हैं उनकी प्रकृति तामसी–आसुरी है।

13. दैवी प्रकृति वाले महात्मा मेरे को आदि कारण, सनातन, अविनाशी समझ कर एकाग्र हो के मेरे को मानते हैं।

14. पक्के निश्चय वाले–मेरा नाम गुण–कीर्तन में मग्न रह के, मेरी भक्ति करते हैं, हमेशा मेरे में मग्न रहते हैं।

15. मुझ सर्वव्यापी परमात्मा को कोई तो ज्ञान यज्ञ से अद्वैत रूप में वासदेव सम पूजते हैं और दूसरे द्वैत में स्वामी सेवक भाव से पूजते हैं कोई बहरूपी समझ के भजते हैं।

16. हवन कर्म यज्ञ पित्रों का आधार मैं ही तो हूँ। यज्ञ, औषधि मंत्र, आहूति, घी, अग्नि, हवन, क्रिया मैं ही तो हूँ।

17. हे अर्जुन, मैं इस जगत का माता–पिता पितामह (पालने वाला, ब्रह्मा) और कर्मों का फल देने वाला हूँ, और जानने योग्य पवित्र अर्थवेद, सामवेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद मैं ही तो हूँ।

18. प्राप्त करने योग्य (गत) पालने वाला सभी का स्वामी प्रभु शुभ–अशुभ का साक्षी, सखा, मित्र उत्पति संसार मैं ही तो हूँ,

प्रलय–स्थिति, अमर, बीज–कारण सभी का आधार अविनाशी मैं ही तो हूँ।

19. मैं ही सूर्य रूप से गर्मी दे रहा हूँ वर्षा को करता हूँ। फिर मैं ही बरसात मैं ही अमृत और सत्य–असत्य सभी कुछ मैं ही तो हूँ।

20. तीनों वेदों के जो कर्म कांडी सकामी सोम रस पी के पापों से रहित होके यज्ञ करके स्वर्ग चाहते हैं पुण्यों के फल से इंद्रलोक ले के वो स्वर्ग में देवताओं के भोगों को भोगते हैं।

21. स्वर्ग लोक के सुख भोग के खत्म होने पर फिर मृत्यु लोक में आते हैं ऐसे सकामी कर्म कांडी कामना वाले पुरूष बार–बार आते और जाते हैं। पुण्यों के कारण स्वर्ग में जाते है और फिर क्षीण होने पे मृत्यु लोक में आते हैं।

22. सच्चे योगी वो जो मुझ में एकाग्र हो के निरन्तर लगातार मेरे चिन्तन में निष्काम भाव से भजते हैं उसके योगक्षेम का भार मेरे पर है। (योग अप्राप्ति की प्राप्ति का नाम योग है उसकी रक्षा करना क्षेम है)

23. सकामी भगत श्रद्धा रख के भजते हैं वे अज्ञान अंधेरे में हैं वो मेरे को नहीं पहचानते पर मेरे में ही हैं।

24. क्योंकि सभी यज्ञों का स्वामी मैं ही हूँ सभी यज्ञ मेरे में ही रहते हैं पर मेरा सच्चा स्वरूप न पहचान के काल चक्र में घूमते हैं और आते–जाते हैं।

25. ये नियम है कि देवाताओं के पूजने वाले देवताओं को प्राप्त करते हैं, पित्तरों वाले पित्तरों के लोंकों को, भूतों वाले भूतों के लोक को और मेरे भक्त मेरे को ही आके मिलते हैं इसीलिए मेरे भक्त फिर जन्म मरण में नहीं आते। (पुर्नजन्म)

26. जो पुष्य, पत्र, फल, फूल और जल मेरे को प्यार से अर्पण करता है, उस निष्काम प्रेमी का प्रेम–भक्ति से अर्पण किया स्वीकार करता हूँ।

27. हे अर्जुन, तू जो कर्म करता है जो खाता है, हवन करता है दान देता है तपस्या करता है सभी मेरे में ही अर्पण कर।

28. ऐसे सभी कर्म जो मेरे में अर्पण करता है ऐसा व्यक्ति, शुभ–अशुभ कर्म फल के बन्धन से मुक्त हो के मेरे को प्राप्त करते हैं।

29. सभी में सम्भाव से व्यापक हूँ न कोई मेरा प्रिय है न कोई अप्रिय है पर जो मेरे को भजता है मैं उस में हूँ और वो मेरे में है।

30. बड़ा कोई दुराचारी भी एकाग्रचित से मेरे को भजता है तो वो साधु सच्चा है क्योंकि अभी वो यथार्थ निश्चय वाला है, परमात्मा में ही मन है सभी कुछ परमात्मा को ही समझता है।

31. वो तुरन्त धर्मात्मा हो जाता है वो हमेशा प्रेम शान्ति में रहता है पक्का जानों कि मेरा भक्त नाश नहीं होता।

32. स्त्री, वैश्य, शूद्र और पाप योनि, चंडाल वगैरह कोई भी मेरी शरण् में आता है वो परम गति को प्राप्त होता हैं

33. तो फिर पुण्यकारी ब्राह्मण और राज ऋषि भक्त मेरे–उन की कौन सी बात करूं। इस दुःख रूपी दुनियां में आके अर्जुन तू भी मेरा ही ध्यान धर।

34. मन मेरे में रख, मेरा भगत बनके मेरी पूजा कर मुझे नमस्कार कर मेरी ओट ले और अपनी आत्मा को मेरे से जोड़ कर बिना संदेह के तू मेरे से मिल जायेगा।

अध्याय दसवां-विभूति योग

श्लोक 1 से 41

1. हे अर्जुन ! फिर मेरे रहस्य भरे वचन सुन क्योंकि तू मेरा परम प्यारा है तेरी भलाई के लिये सुना रहा हूँ।

2. हे अर्जुन ! ऋषि देवता भी मेरे जन्म को नहीं जानते क्योंकि मैं सभी का अनादि कारण हूँ।

3. जो मेरे को जन्म रहित अजन्मा अनादि, तत्व से जानता है ऐसा ज्ञानी मनुष्य सभी पापों से छूट के मुक्त हो जाता है।

4, 5. निश्चय करने की शक्ति, तत्व, ज्ञान, अमूर्खता, क्षमा, सत्य, इन्द्रियों को वश में रखना, मन को रोकना दुख–सुख, उत्पति–प्रलय, अहिंसा–समता, संतोष तप दान, यश–अपयश (कीर्ति–निन्दा) ये अलग–अलग भाव प्राणियों में मेरे से ही उत्पन्न होते हैं।

6. हे अर्जुन ! सप्तऋषि और चार उससे पहले सनकादि चौदह मनु सभी मेरे में भाव रखने वाले मेरे संकल्प से ही उत्पन्न होते हैं। और उन से ही संसार के सारे लोग पैदा हुये हैं।

7. जो मनुष्य मेरे परम एश्वर्य रूप विभूति को और योग शक्ति को तत्व सहित जानता है ऐसा अचल योगी मेरे में स्थित है इस में थोड़ा भी शक नहीं है।

8. सारे जगत की उत्पत्ति का कारण मैं ही वासुदेव हूँ और सारा जगत मेरे ही आधार पर चेष्टा करता है ऐसे तत्व से जान के बुद्धिमान श्रद्धा भक्ति में रह के हमेशा मेरे को भजते हैं।

9. मेरे भक्त हमेशा मेरे में मन चित रखने वाले, मेरे लिये प्राण अर्पण करने वाले, मतलब मेरे लिये ही जीवन देते हैं हमेशा मेरी ही चर्चा एक दूसरे से करते हैं।

10. वे भक्त हमेशा मेरे ध्यान में रहने वाले प्रेम से मेरे को पूजते हैं उन को मैं वो तत्व ज्ञान रूप योग देता हूँ जिससे वे मेरे को प्राप्त करते हैं।

11. करूणा वश, मैं खुद उन के हृदय में आके वास करता हूँ और अज्ञान अंधकार को ज्ञान दीपक से नष्ट करता हूँ।

12,13,14. अर्जुन ने कहा "हे भगवन तुम ही परम् ब्रह्म, परम् धाम, परम् पवित्र है सभी ऋषि मुनि भी तुम्हारे तेरे को सनातन दिव्य पुरूष कहते हैं। देवों का भी देव, अजन्मा सर्वव्यापी है, सभी ऋषि नारद, सभी देव ऋषि वेदव्यास तेरे को पूजते हैं और आप खुद भगवान अपने रूप के बारे में ऐसे कहते हो मुझसे सब मैं सच मानता हूँ, हे भगवन तेरा रूप, लीला न दानव जानते हैं न देवता जानते हैं।

15. हे पुरूषोत्तम, जग के पिता, देवों के देव, जगत स्वामी आप खुद ही अपने रूप को जानते हो।

16. मेरे को तुम अपनी शक्तियाँ बताओं जिसे के जरिये तुम सभी में व्यापक हो।

17. हे कृष्ण योगेश्वर मैं किस प्रकार चिंतन करता हुआ आपको जानूँ ?

18. हे कृष्ण तुम्हारी योग शक्तियाँ और विभूतियाँ दोनों का विस्तार करके मुझे बताओ क्योंकि तुम्हारे अमृत वचन सुन कर मुझे तृप्ति नहीं होती फिर–फिर सुनता ही रहूँ।

19. भगवान ने कहा, "मैं अपनी विभूतियाँ तुझ को सुनाता हूँ क्योंकि उनके ऐश्वर्य और विस्तार का अन्त नहीं हैं।

20. हे गुडाकेश (आलस्य और निद्रा को जीतने वाला) सभी प्राणियों के हृदय में स्थित आत्मा मैं ही हूँ, सभी प्राणियों का आदि, मध्य और अन्त मैं ही तो हूँ। (ब्रह्मा, विष्णु, शिव)

21. अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु मतलब वामन अवतार, ज्योतिषियों में तेजवान सूर्य, तारों में चन्द्रमा, वायु देवताओं में मारीचि वायु देवता मैं ही तो हूँ।

22. वेदों में सामवेद, देवों में इन्द्र, इन्द्रियों में मन प्राणियों में चेतना मतलब ज्ञान शक्ति मैं ही हूँ, जीवों में हल चल मैं ही हूँ।

23. रूद्राक्षों में शंकर, यक्ष–राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर मैं ही हूँ, वसुओं में अग्नि हँ और पहाड़ों में (सुमेरू) समीर पर्वत मैं ही हूँ।

24. पुरोहितों में बृहस्पति मुख्य देवता, सेनापति में मुख्य सेनापति कार्तिकेय सभी नदियों में समुद्र मैं ही हूँ।

25. ऋषियों में भृगु ऋषि, वाणी में एक अक्षर ओऽम् मैं ही हूँ, यज्ञों में जप यज्ञ, पहाड़ों में अचल हिमाचल मैं ही तो हूँ।

26. पेड़ों में पीपलदेव, ऋषियों में नारद ऋषि गंधरवों में चित्ररथ, सिद्वों में कपिल मुनि मैं ही तो हूँ।

27. हे अर्जुन ! घोड़ों में अमृत से उत्पन्न हुआ उच्चैःश्रवा घोड़ा, हाथियों में ऐरावत हाथी, मनुष्यों में राजा मेरे को ही जान।

28. मैं शस्त्रों में वज्र, गायों में कामधेनु, शास्त्रों के मुताबिक सन्तान की उत्पति का हेतु कामदेव मैं हूँ, सर्पों में वासुकि सर्प राज मैं हूँ।

29. नागों में शेष नाग, जल में वरूण देवता मैं, पितरों में अर्यमा, राजा और सजा देने में यमराज मैं ही तो हूँ।

30. हे अर्जुन मैं दैत्यों में प्रह्लाद, गणना करने वालों में काल (समय) मैं हूँ, पशुओं में सिंघराज शेर, पक्षियों में गरूढ़ पक्षी मैं ही तो हूँ।

31. पवित्र करने वाली वायु शस्त्र धारी, क्षत्रियों में राम, मछलियों में मगर, नदियों में भागीरथी (गंगा) मैं ही हूँ।

32. सृष्टि का आदि अन्त बीच मैं ही हूँ, विद्या में ब्रह्म विद्या मैं, वादियों में ज्ञान वाद मैं हूँ।

33. अक्षरों में अकार, नाश से रहित काल का महाकाल और विराट स्वरूप सभी का धारण पोषण करने वाला मैं हूँ।

34. सभी की मृत्यु और उत्पति का कारण मैं हूँ, स्त्रियों में कीर्ति (लक्ष्मी) सरस्वती मैं ही हूँ, निर्मल बुद्धि स्मृति धृत्ति क्षमा मैं ही तो हूँ।

35. मंत्रों में गायत्री, श्रुतियों में ब्रहत्मास, महिनों में माघ, ऋतुओं में बसन्त ऋतु मैं ही हूँ।

36. छल करने वालों में जुआ, तेजों में तेज मैं हूँ जीतने वालों में विजय मैं और निश्चय वालों का निश्चय और सात्विक पुरूषों का सात्विक भाव मैं हूँ।

37,38 यादवों के कुल में कृष्ण वासुदेव खुद और पांडवों में अर्जुन, मुनियों में वेद व्यास कवियों में शुक्राचार्य कवि भी मैं हूँ, जीतने वालों की इच्छा नीति मैं, गुप्त बातों का मौन मैं हूँ। ज्ञानवानों का तत्वज्ञान भी मैं हूँ।

39. हे अर्जुन ! सभी प्राणियों की उत्पति का कारण मैं ही हूँ जड़ चाहे चेतन कुछ भी मेरे सिवाय नहीं है सभी मेरा स्वरूप है।

40. मेरी दिव्य विभूतियों का ईश्वरीय शक्तियों का कोई अन्त नहीं है, ये तो थोड़े में अपनी विभूतियों का वर्णन तुमको बताया है। इसीलिये जो भी शक्ति या शोभा या प्रभाव वाला पदार्थ तू देखता है वो सभी मेरे तेज का ही अंश है मैं ही हूँ ऐसा जान।

41. हे अर्जुन! इससे ज्यादा विस्तार से जानने का तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है, मैं इस सारे जगत को अपनी योग शक्ति के एक अंश मात्र से धारण कर रहा हूँ, इसलिए मेरे को ही तत्व से जानो।

विभूती योग वाला दसवां अध्याय समाप्त हुआ

अध्याय ग्यारवां-विश्व रूप दर्शन योग

श्लोक 1 से 55

1. अर्जुन ने कहा "हे भगवान, मुझ पर कृपा करके ये आध्यात्मिक प्रेम ज्ञान जो मुझे आप ने बताया है इस कारण से मेरा मोह अज्ञान निवृत हो गया है।

2. सृष्टि की उत्पति और प्रलय तुम ने विस्तार से समझाई है और अपना अविनाशी परम पद भी समझाया है।

3. हे परमेश्वर जैसा आप अपने को कहते हैं मैं भी वैसा ही जानता हूँ किन्तु मैं आपका ईश्वरीय रूप प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ।

4. अगर तुम्हारा अविनाशी स्वरूप देख सकूं तो मुझे दर्शन कराओ।

5. कृष्ण बोले "मेरो सैकड़ों और हजारों नाना प्रकार, नाना रंगो वर्णो वाला अलौकिक रूप देखो।

6. हे अर्जुन! मेरे में अदिति पुत्र और अग्नि वसु और रूद्र, अश्विनी कुमार, मरूदगण और पहले से देखे हुये आश्चर्य मय रूप देखो।

7. मेरे देह के अन्दर एक जगह स्थित जड़ और चेतन सारे जगत को देखो और भी जो कुछ देखना चाहो देखो।

8. पर इन चमड़े की आँखों (बाहर की आँखों) से मेरे को नहीं देख सकते, तुम को दिव्य दृष्टि देता हूँ जिस के प्रभाव से मेरे को और मेरी योग माया को देख।

9. संजय ने कहा "हे धुतराष्ट्र राजन। कृष्ण योगेश्वर ने ऐसा कह के अर्जुन प्यारे को अपना दिव्य रूप दिखाया।

10,11 अनेक मुखों और अनेक नेत्रों वाला बिल्कुल विस्मय में डालने वाला अनेक गहने अनेक हथियार हाथों में लेके अनेक सुन्दर मालाएँ पहन के, कपड़े पहने हुये, दिव्य सुगंध सीमा रहित विराट स्वरूप परम् देव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा।

12. अर्जुन ने हजार सूर्यों से ज्यादा रोशनी देखी, हजार सूर्य एक ही समय (टाईम) में आकाश में निकले तो भी उनके जितने तेज के समान नहीं हो सकते।

13. ऐसा अद्‌भुत रूप अर्जुन ने कृष्ण के शरीर में देखा जो अलग–अलग जहान् में है, वों देवों के देव कृष्ण में देखा।

14. तभी वीर अर्जुन हैरान हो गया, रोम–रोम हर्ष से भर गया और सिर झुकाकर हाथ जोड़ कर श्रद्धा भक्ति के साथ विश्व रूप परमात्मा को उसने कहा।

15. हे देव! आपकी देह के अन्दर सभी देवताओं और नाना प्रकार के प्राणी देखता हूँ कमल फूल में ब्रह्मा और शंकर शिव, सर्प और सभी ऋषियों को देखता हूँ।

16. तुम्हारे अनेक हाथ पेट मुख आँखें अनन्त तेरे रूप देखता हूँ, ये अनन्त आपके रूप, विश्व रूप में तुम्हारा न अन्त न बीच न आदि (शुरूआत) है।

17. मुकुट धारण करने वाला, गदा चक्र से युक्त तथा कठिनता से देखे जाने योग्य और सब ओर से अप्रमेय स्वरूप देखता हूँ।

18. हे भगवान! तुम ही जानने योग्य परम् अक्षर पार ब्रह्म परमात्मा है, तू इस जगत का आधार है, सनातन धर्म का रखपाल है, तू ही अविनाशी है, सनातन पुरूष है, ये मेरा मत है।

19. न तेरा आदि अन्त न बीच है अपार शक्ति वाले सूर्य चन्द्रमा जैसी आँखों वाला तेरा मुख जलती अग्नि के समान तेज,

जिससे सारे जहाँ को रोशन कर रहे हो ऐसे देख रहा हूँ।

20. तू सर्वव्यापी तू ही पृथ्वी आकाश बीच का अन्तरिक्ष सभी दिशाओं में परिपूर्ण है तेरा अलौकिक भयानक रूप देख के तीनों लोक काँप रहे हैं।

21. ये सभी देवताओं की टोलियां तेरे में समायी हुई है, तेरी ही पूजा करते हैं, ये सभी देवताओं की टोलियां सब हैरान हो के तुम को देख रही हैं।

22 23 तेरे मुख अनेक नेत्र अनेक, हाथ पाँव टांगे अनेक ऐसा विकराल तुम्हारा रूप देख के लोक व्याकुल हो रहे हैं।

24. आकाश को छूने वाला, चमकने वाला, अनेक रंग रूप में खुले मुँह वाला, तेज वाली आँखों वाला रूप तेरा देख कर में डर रहा हूँ अन्दर में धीरज और शान्ति नहीं है।

25. तुम्हारे मुख प्रलय काल के समान जलते देख दिशाओं को नहीं जानता, हे जगत के आधार मैं शान्त नहीं हो पा रहा हूँ, मेरे पे राजी हो जाओ।

26, 27 धृतराष्ट्र के सभी बेटे राजाओं की टोलियां तेरे में ही प्रवेश कर रहे हैं भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण, हमारे तरफ के योद्धा सभी तुम्हारे जलते मुख में जा रहे हैं और कितने तुम्हारे दांढ़ों में अटके हुये देख रहा हूँ।

28. नदियों का बहाव जैसे सागर की तरफ होता है मतलब नदियां सागर से जाकर मिलती हैं।

29. ये सूरमा भी तुम्हारे जलते मुख में जा रहे हैं जैसे पतंगे मोह के अधीन होकर आग में उड़ कर जाते हैं जलने के लिये वैसे ये सभी लोग जल्दी–जल्दी जाते हैं तेरे मुख में जाने के लिये।

30 आप सभी लोकों को अपने जलते मुख में डाल के खा के

अपने मुंह को चाट रहे हो सारे जगत को अपने तेज से तपा रहे हो।

31. हे भगवान कृपा करके मेरे को बताओं कि भयानक रूप वाले तुम कौन हो ? परम देव तेरे को नमस्कार है, आदि कारण तू है तेरा अन्त मैं नहीं ले सकता।

32 श्री कृष्ण ने कहा, "लोकों को नाश करने वाला महाकाल मैं हूँ, लोंकों को नाश करने के लिए मैं आया हूँ तेरे युद्ध नहीं करने से भी योद्धा नाश हो जायेंगे।"

33. इसीलिए उठो और यश प्राप्त करो दुश्मन को जीतो, ये सभी योद्धा मेरे द्वारा पहले से ही मारे गये हैं तू सिर्फ निमित्त मात्र है।

34. जयद्रथ, द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह और कर्ण दूसरे अनेक योद्धा मेरे द्वारा मरे पड़े हैं उनको तू मारकर डर नहीं, करो पक्का जानों तेरी जीत हैं इसलिए युद्ध करो।

35. संजय ने कहा, "हे राजन भगवान के ये वचन सुनकर अर्जुन हाथ जोड़कर डर के नमस्कार करके डरी आवाज से बोला।

36. हे, कृष्ण ! तेरे कीर्तन में जगत खुश हो रहा है। राक्षस डरकर भाग रहे है और सिद्धप्राणी आपको नमस्कार करते हैं।"

37. क्यों नहीं तुमको नमस्कार करें ? क्योंकि तू सभी का आदि कर्ता ब्रह्मा से भी ऊँचा है बेअन्त सत्य–असत्य से परे तू ही ब्रह्म है।

38. हे प्रभु! तुम आदि देव और सनातन धर्म पुरूष है तुम जगत का आधार जानने योग्य हैं सारा जगत तुम से व्यापक हैं।

39. तुम हवा, यमराज, अग्नि, वरूण, चन्द्रमा और ब्रह्मा उन का भी स्वामी है, हजार बार तुमको नमस्कार है। बार–बार नमस्कार है।

40. आगे तुम को नमस्कार, पीछे तुम को नमस्कार सभी तरफ से तुम को नमस्कार है, सभी में समाया सभी रूप तुम्हारे ही हैं तेरी शक्ति बेअन्त है तेरा बल अपार है।

41,42. तेरी महिमा को न जानकर, तेरे को मित्र समझ के हे कृष्ण! यादव सखा! ऐसे भूल या हँसी मस्ती में उठते या बैठते अकेले या सभी के बीच में मेरी गलती को माफ करो।

43. जड़ चेतन जगत का तू पिता, गुरू ही है, पूजने योग्य तुम्हारे जैसा कोई नहीं है तो फिर तेरे से उपर और कौन होगा।

44. साष्टांग प्रणाम तेरे को करता हूँ हे पूज्य ईश्वर तू प्रसन्न हो जैसे बाप बेटे के, मित्र–मित्र के, पति स्त्री के अपराध सहन करते हैं। ऐसे तू मेरे का माफ कर पहले कभी भी तेरे ऐसे रूप को न देखकर मेरा रोम–रोम खुश हो गया है और डर से मन व्याकुल भी हुआ है इसलिये पहले वाला चतुर्भज रूप मेरे को दिखाओ, हे देव मेरे पे प्रसन्न हो।

46. तेरे को मैं उसी मुकुटधारी हाथ में गदा और चक्र से देखना चाहता हूँ अपना चतुर्भुज रूप फिर धारण करो।

47. भगवान कृष्ण ने कहा "हे अर्जुन! प्रसन्न हो के तेरे को मैने योग शक्ति से तेजस्वी विराट रूप दिखाया है जो पहले तेरे सिवाय किसी को नहीं दिखाया है।

48. ऐसा विराट रूप न वेद अभ्यास न यज्ञ, न तपस्या न दान क्रिया से तेरे सिवाय और कोई ऐसा दर्शन नहीं कर पायेगा।

49. मेरे डरावने स्वरूप को देखकर डर नहीं जाओ और व्याकुल नहीं हो, अन्दर से घबराहट निकाल के शान्त चित्त हो के मेरे पहले वाला चतुर्भुज रूप देखो।

50. संजय ने धृतराष्ट्र को कहा, "हे राजन भगवान कृष्ण ने उस

को अपना पहले वाला चतुर्भुज स्वरूप फिर दिखाया और शान्त मुख वाले रूप से व्याकुल अर्जुन को धीरज दिया।

51. अर्जुन ने कहा, "हे भगवान! तुम्हारा ये शान्त स्वरूप देख के मेरा चित्त शान्त हुआ व्याकुलता दूर हुई है। अपने असली रूप स्वभाव में पहुँचा हूँ।

52. जिस स्वरूप का दर्शन बहुत मुश्किल है, हे अर्जुन वो तुमने किया है देवता भी ऐसे दर्शन के लिये तरसते हैं।

53. हे अर्जुन! जो दर्शन तूने मेरा किया है ऐसा दर्शन वेदों के पढ़ने, तपस्या करने, दान यज्ञ करने से भी प्राप्त नहीं होता है।

54. हे अर्जुन! ज्ञान मतलब अनन्य भक्ति से मेरी पहचान होती है और मेरा दर्शन करके मुझे प्राप्त कर सकते हैं।

55. हे अर्जुन, जो मनुष्य अपने सभी कर्म मेरे को अर्पण करता है और ऐसे कर्म करता है मेरे ही सहारे रहता है मेरे को ही सब समझता है ऐसा सच्चा मेरा भक्त है, वैर, विरोध से जो दूर है, मोह से रहित वो मेरे को ही प्राप्त करता है।

विश्व रूप दर्शन वाला ग्यारवाँ अध्याय समाप्त हुआ

अध्याय बारहवां-भक्ति योग

1. अर्जुन ने कहा "कोई भक्त इस तरीके से तुम्हारे सगुण रूप ध्यान करते हैं कोई निराकार को भजते हैं उन दोनों में से उत्तम तरीका कौन सा है।

2. श्री कृष्ण ने कहा, "जो मेरे में निरन्तर हमेशा मन लगाके ऐसे श्रद्धा वाले सगुण परमात्मा की पूजा करते हैं वो मेरे परम प्यारे उत्तम में उत्तम योगी वो ही कहलाते हैं वह योगियों से भी श्रेष्ठ है।

3,4. जो मनुष्य इंद्रियों को वश में करके समदृष्टि धारण करता है परोपकार करता रहता है मन बुद्धि से दूर सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान नित्य एक रस अविनाशी निर्गुण ब्रह्म में हमेशा ध्यान लगाके रखता है वो मेरे में ही समा जाता है।

5. पर उन को निर्गुण रूप का ध्यान करने के लिये ज्यादा परिश्रम करना पड़ता है कठिन साधारण देहधारी साधन मनुष्य के लिये निराकार ब्रह्म का ध्यान करना मुश्किल है।

6,7. हे अर्जुन! जो अपना हर कर्म मेरे को अर्पण करके, प्रेम से तेल की धारा जैसे लगातार मेरे सगुण रूप का, एक मन रूप हो के ध्यान करते हैं मेरे में ही लीन रहते हैं वो इस संसार में सागर तैर के पार हो जाते हैं।

8. हे अर्जुन! मन बुद्धि मेरे को अर्पण करो तो फिर जरूर ही मेरे में समा जायेगा।

9. पर अगर तुम्हारा चित्त मेरे में मग्न नहीं होता तो अभ्यास योग से मेरे को प्राप्त कर सकेगा।

10. अगर तुम अभ्यास भी नहीं कर सकता तो अपने सभी कर्म मेरे

को अर्पण कर तो भी उत्तम पद प्राप्त कर सकेगा।

11. कर्मों को अर्पण करने के लिये भी अगर निर्बल है तो योग का आसरा लो और कर्मों के फल का त्याग करो।

12. बिना समझ के अभ्यास से शास्त्र ज्ञान बेहतर है, ज्ञान से उत्तम ध्यान हैं, ध्यान से बेहतर सभी कर्मों के फल का त्याग, कर्म अर्पण करना उत्तम है वो सच्ची शान्ति भाव से प्राप्त होती है।

13. जो संसार में किसी से ईर्ष्या दुश्मनी नहीं रखता और सभी को अपना मित्र, अभिमान रहित ममता रहित, क्षमावान दयालु, (र्निअभिमानी) सुख–दुख में सम रहता है। वो मेरा भक्त मुझे अति प्रिय है।

14. जो पुरूषार्थ में लगा रहता है, पक्के निश्चय वाला, फायदे नुकसान में समान मन और इंद्रियों पे वश (कंट्रोल) रखने वाला मन बुद्धि मेरे में अर्पण करके वो ही मेरा प्यारा भक्त है।

15. जो किसी से नहीं डरता है न हीं किसी को दुख पहुँचाता है, वो किसी से दुःखी नहीं होता है, जो खुशी और गम, डर और क्रोध से छूटा हुआ है वो मेरा प्यारा भक्त है।

16. जो मनुष्य इच्छा रहित और अन्दर बाहर शुद्ध, पवित्र, होशियार है जिस काम के लिये आया है वो पूरा किया है। चिन्ता बिना, पक्षपात रहित, सभी कर्मो में अभिमान का त्यागी मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

17. जो हर्ष और द्वेष का त्याग करता है, न दुख करता है न कामना करता है, जो शुभ–अशुभ कर्मों के फल का त्याग करता है वो भक्त मेरे को प्यारा है।

18. जो पुरूष दोस्त–दुश्मन में, मान–अपमान में समान है,

गर्मी–सर्दी, दुख–सुख वगैरह द्वन्दों में समान है और संसार में मोह के बगैर रहता है।

19. निन्दा और प्रशंसा मे एक जैसा विचारवान है सभी से सन्तुष्ट, रहने के स्थान में जिसकी ममता नहीं है, स्थिर बुद्धि वाला भक्त मेरे को प्यारा है।

20. अमृत रूपी ये ज्ञान जो अमल में लाता है और सच्ची श्रद्धा से मेरी शरण लेता है वो मुझ को प्रिय है।

भक्ति योग वाला बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ

अध्याय तेरहवां-

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ विभाग योग

1,2. कृष्ण बोले, " हे अर्जुन! ये शरीर क्षेत्र है ऐसे कहा गया है और उसको जो जानता है उस को क्षेत्रज्ञ, वो उस तत्व को जानने वाला ज्ञानी पुरूष कहलाता है।

3. हे अर्जुन ! सभी क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मतलब जीव आत्मा भी मेरे को जान और क्षेत्र मतलब विकार सहित प्रकृति और पुरूष को जो तत्व सहित जानना है वो ज्ञान है, ये मेरा मत है।

4. इसलिये ये जो क्षेत्र है जैसे है, वो जिन विकारों वाला है और जिस कारण ऐसे हुआ है और वो क्षेत्रज्ञ भी, जो है और जिस प्रभाव वाला है वो सभी कुछ संक्षेप में मेरे से सुनो।

5. वो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से समझाया गया है और अच्छी तरह निश्चय किया ब्रह्म पद वालों ने भी कहा है।

6. हे अर्जुन वो ही तेरे लिये कहता हूँ–पाँच महाभूत मतलब आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी का सूक्ष्म भाव अंहकार बुद्धि और मूल प्रकृति मतलब त्रिगुण माया और दस इंद्रियाँ मतलब कान, चमड़ी, आँखें, जुबान, नाक और मुह हाथ, पाँव और दो अन्दर वाली इंद्रियाँ एक मन और पाँच इंद्रियों के विषय मतलब शब्द स्पर्श, रूप,रस, गंध और इच्छा–द्वेष, सुख–दुख और स्थूल शरीर का पिंड, चेतना और धारणा, अन्तःकरण, क्षेत्र कहा गया है।

7. हे अर्जुन उत्तम पने का अभिमान नहीं होना, पाखंड का नहीं होना, मनुष्यों को किसी प्रकार नहीं सताना, क्षमा भाव, मन वाणी की सरलता, श्रद्धा भक्ति के साथ गुरू की सेवा, बाहर

अंदर की शुद्वता, अन्तःकरण की स्थिरता, मन और इंद्रियों सहित शरीर पर संयम (कंट्रोल)।

8. इस लोक और परलोक के सभी भोगों में आसक्ति का नहीं होना, जन्म मरण बुढ़ापे और बीमारी में दुख दोष का फिर–फिर विचार न करना।

9. बेटे स्त्री और धन में आसक्ति का नहीं होना, ममता का नहीं होना, पसन्द और न पसन्द की प्राप्ति में हमेशा एक जैसा रहना मतलब मन में अनुकूल प्रतिकूल प्राप्त पर हर्ष शोक या विचारों का नहीं होना।

10. मैं परमात्मा में एक ही भाव से स्थित रूप ध्यान योग से अव्यभिचारी भक्ति, एकान्त और शुभ स्वभाव में रहना और विषय आसक्ति वाले के संग में प्रेम का नहीं होना।

11. आत्मज्ञान में नित स्थिति, तत्व ज्ञान और अर्थ रूप सर्वत्र देखना ये सबज्ञान है और उसके उल्टा जो है अज्ञान है ऐसे कहा गया है।

12. हे अर्जुन! जो जानने योग्य है और जिसको जानके मनुष्य प्रेम आनन्द को प्राप्त होता है उसको अच्छी तरह से बताऊँगा ये आदि रहित, परम् ब्रह्म का कथन नहीं कर सकते हैं, इसको न सत न असत् कहा गया है।

13 मगर वो सभी तरफों से हाथों पैरों वाला और सभी तरफों से नेत्रों और मुखों वाला और सभी तरफों से सुनने वाला है क्योंकि वो सारे संसार में व्यापक और स्थित है।

14. और सभी इंद्रियों के विषयों को जानने वाला है, असल में सभी इंद्रियों से रहित है और आसक्ति रहित और गुणों से दूर होते हुये भी अपनी योग माया से सब को धारण करने वाला और गुणों को भोगने वाला है।

15. वो परमात्मा जड़ चेतन सभी भूतों के बाहर–अन्दर भरपूर और जड़ चेतन रूप भी वो ही है। वो सूक्ष्म होने के कारण जानने में नहीं आने वाला और बहुत नजदीक में और दूर भी वो ही है।

16. वो विभाग रहित एक ही रूप आकाश जैसे परिपूर्ण होते हुये भी चर अचर सभी भूतों में अलग–अलग लगता है वो जानने योग्य परमात्मा विष्णु रूप में पालन पोषण करने वाला और रूद्र रूप में नाश करने वाला ब्रह्म रूप से सब को उत्पन्न करने वाला है।

17. और वो ब्रह्म ज्योतियों की भी ज्योती माया से बहुत दूर बोला गया है और तत्व ज्ञान से प्राप्त होने वाला सभी के हृदय में स्थित है।

18. हे अर्जुन इसी प्रकार क्षेत्र और ज्ञान, जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप थोड़े में कहा गया है उस को तत्व से जानके मेरा भक्त मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

19. हे अर्जुन! प्रकृति मतलब तीन गुणों की माया मेरे और जीव आत्मा मतलब क्षेत्रज्ञ उन दोनों को तू अनादि जान और राग द्वेष विकारों को, त्रिगुणी सभी पदार्थों को भी प्रकृति से उत्पन्न हुआ जान।

20. क्योंकि कार्य और कारण को उत्पन्न करने का हेतु (कारण) प्रकृति कही गयी है और जीव आत्मा सुखों–दुखों के भोगपने में मतलब भोगने का कारण कही गयी है।

21. मगर प्रकृति में स्थित हुआ पुरुष ही प्रकृति से उत्पन्न हुई त्रिगुणात्मक सभी पदार्थों को भोगता है और उन गुणों का संग ही उस जीव आत्मा को अच्छे या बुरे जूणीयों में जन्म देने का कारण है।

22. हकीकत में ये पुरूष इस शरीर में स्थित होते हुये भी त्रिगुणी माया से अतीत (न्यारा) ही है। सिर्फ साक्षी होने से आप दृष्टा

(देखने वाला) और यथार्थ सम्मति देने वाला होने के कारण अनुमता (राईट सलाह) और सब को धारण करने वाला होने के कारण भरता (सभी का आधार) जीव रूप से भोगता और ब्रह्म आदि का स्वामी होने के कारण महेश्वर और शुद्ध सतचित् आनन्द धन होने के कारण परमात्मा कहा गया है।

23. इसलिये पुरूष को और गुणों सहित प्रकृति को जो मनुष्य तत्व से जानता है वो सब वरतन में होते हुये भी (व्यवहार करते हुए भी) जन्म नहीं लेता और दूसरे जन्म को प्राप्त नहीं होता।

24. हे अर्जुन! उस प्रेम पुरूष परमात्मा को कितने मनुष्य तो शुद्ध और सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं और कितने निष्काम कर्म योग द्वारा देखते हैं।

25. मगर उनसे दूसरे जो कम बुद्धि वाले हैं वो खुद ऐसे नहीं जानि के दूसरों से मतलब जो तत्व को जानते हैं उन पुरूषों से सुन के ही उपासना करते हैं उन पुरूषों के कहने के अनुसार ही श्रद्धा सहित तत्पर हो के साधन करते हैं वो सुनने वाले पुरूष भी निसंदेह मृत्यु लोक से तर जाते हैं।

26. हे अर्जुन! जो भी जड़ चेतन वस्तु उत्पन्न होती है, उसको तू क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के मिलाप से उत्पन्न हुई जान, मतलब प्रकृति और पुरूष के परस्पर सम्बन्ध से ही सम्पूर्ण जगत की स्थिति है। असल में तो सारा संसार नाशवान और क्षणभंगुर है।

27. ये जान के जो पुरुष नष्ट होने वाले जड़ चेतन भूतों में नाश रहित परमेश्वर समभाव से स्थित देखता है।

28. क्योंकि वो सभी में समभाव से स्थित परमेश्वर को समान देखते अपने आप को नष्ट नहीं करता मतलब शरीर के नाश होने पर अपना नाश नहीं मानता इसलिए वो परमगति को प्राप्त होता है।

29. और जो पुरूष सभी कर्मों को सभी प्रकार से प्रकृति से हुआ देखता है। मतलब तत्व से समझ जाता है इस बात को कि प्रकृति से उत्पन्न हुए सभी गुण गुणों में वर्तते हैं और आत्मा अकर्ता है ऐसे देखता है।

30. और वो पुरूष जिस काल में भूतों के अलग–अलग भाव को एक परमात्मा के संकल्प के आधार पर स्थित देखता है और उस परमात्मा के संकल्प से ही सारा विस्तार देखता है इस काल में सत्चित् धन परमात्मा को प्राप्त होता है।

31. हे अर्जुन! अनादि होने के कारण और गुणातीत होने के कारण ये अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित होते हुये भी वास्तव में न कर्ता है न लिपायमान ही होता है।

32. जिस प्रकार सर्व व्याप्त होते हुये भी आत्मा गुणातीत होने के कारण शरीर के गुणों से लिपायमान नहीं होती। वैसे ही सर्वत्र शरीर में होते हुये भी आत्मा गुणातीत होने के कारण शरीर के गुणों से लिपायमान नहीं होती।

33. ये अर्जुन! जैसे एक ही सूर्य ब्रह्मांड को प्रकाश करता है वैसे ही एक ही आत्मा सभी क्षेत्रों को प्रकाशित करती है। मतलब नित्य बुद्ध स्वरूप एक ही आत्मा की सत्ता से सारा ही संसार अलौकित होता है।

34. इसी प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद और विकार सहित प्रकृति से छूटने के उपाय को जो पुरुष ज्ञान नेत्रों द्वारा तत्व को जानते हैं वो महात्मा पुरुष परम् ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

अध्याय चौदहवां-त्रिगुणमयी माया (तीन गुणों का) विभाग-योग

1. इस के बाद भगवान ने कहा, "हे अर्जुन ज्ञानियों में भी अति उत्तम परम ज्ञान को तेरे लिये फिर मैं कहूँगा, जिस को जान के मुनिजन इस संसार सागर से मुक्त होकर परम् सिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं।

2. हे अर्जुन! इस ज्ञान का सहारा ले के मेरे स्वरूप को प्राप्त हुये पुरूष सृष्टि के आदि में फिर पैदा नहीं होते क्योंकि उनकी नजर में मेरे से अलग कोई वस्तु नहीं है।

3. हे अर्जुन! मेरी ये ब्रह्म रूपी प्रकृति यानि त्रिगुणी माया भूतो की जूणी (जन्म स्थली) है यानी गर्भाधान की जगह है और मैं उस जूनी में चेतन रूपि बीज स्थापित करता हूँ उस जड़ चेतन के मिलाप से सब भूतों की उत्पति होती है।

4. हे अर्जुन! बहुत प्रकार के सभी जूनी (योनियों) में जितनी भी मूर्तियाँ यानि शरीर उत्पन्न होते हैं उन सब की त्रिगुणी माया गर्भ को धारण करने वाली माँ माता प्रकृति है और बीज को स्थापित करने वाला पिता मैं हूँ।

5. सतो, तमो रजो गुण, प्रकृति के ये तीनों गुण इस अविनाशी आत्मा को इस शरीर में बांधते है।

6. हे पाप रहित इन तीनों गुणों में प्रकाश करने वाला निर्विकार सतो गुण तो निर्मल होने से सुख की आसक्ति और ज्ञान की आसक्ति से यानी ज्ञान के अभिमान से बाँधता है।

7. राग रूपी रजो गुण को कामना से उत्पन्न जान ये इस जीव आत्मा को कर्म से और उनके फल की आसक्ति से बांधता है।

8. सभी देह अभिमानियों को मोहित करने वाला तमो गुण अभिमान से उत्पन्न होने वाला जान–ये इस जीवा आत्मा को प्रमाद और (इंद्रियों और अन्तःकरण के व्यर्थ कर्म) और आलस और नींद से बाँधता है।

9. क्योंकि सतो गुण सुख में लगाता है रजो गुण कर्म में लगाता है तमो गुण तो प्रमाद में आलस्य में लगाता है।

10. रजो गुण और तमो गुण को दबाके सतो गुण बढ़ता है और रजो गुण और सतो गुण को दबाके तमो गुण बढ़ता है वैसे ही ये तमोगुण और सतोगुण को दबाके रजो गुण बढ़ता है। तीनों आपस में स्पर्धा करते हैं।

11. इसलिये जब मन में, देह (शरीर) अन्तःकरण और इंद्रियों में चेतना शक्ति बढ़ती है, बोध बड़ता है उस काल में ऐसे समझो कि सतो गुण उत्पन्न हुआ है।

12. रजो गुण के बढने पर लोभ, प्रवृति, संसारी कर्मों की चाहना, व्यर्थ कोशिशें, सब कर्मों में स्वार्थ भावना, अशान्ति, मन की चंचलता और विषय भोगों की इच्छा ये सब उत्पन्न होते हैं।

13. तमो गुण के बढ़ने से अन्तःकरण एवं इन्द्रियों में अंधेरा, करने योग्य कर्म से मुंह मोड़ना, बेकार के काम करना, आलस्य, नींद और अन्तःकरण का आकर्षित करने वाली प्रकृति उत्पन्न होती है।

14. जब ये जीव आत्मा सतो गुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसे महर्षियों और भक्तों के उच्च लोकों की प्राप्ति होती है।

15. रजोगुण के बढ़ने पर, मृत्यु होने पर कर्मों की आसक्ति वाले के घर उत्पन्न होगा और तमो गुण बढ़ने से मरने वाला पुरूष कीड़ा, पशु, गधा, कम बुद्धि वालों की जूणीं में पैदा होगा।

16. क्योंकि सतो गुणी कर्मों का फल सात्विक, निर्मल, ज्ञान वैराग्य बोला गया है। राजसी कर्मों का फल दुखः है और तामसी कर्मों का फल अज्ञान होता है।

17. सतो गुण से ज्ञान उत्पन्न होता है, रजो गुण से लोभ, तमो गुण से आलस्य मोह उत्पन्न होता है।

18. इस लिये सतो गुण में स्थित पुरूष स्वर्ग लोक में जाते हैं और रजो गुण में स्थित पुरूष मनुष्य लोक में ही रहते हैं तथा तमो गुणी पुरूष अद्धोगति यानि कीड़ा पशु पक्षी जूनियों को प्राप्त करते हैं।

19. जिस समय दृष्टा यानि सारी चेतन सृष्टि में एकीभाव में स्थित हुआ साक्षी पुरूष तीन गुणों के बगैर दूसरे किसी को कर्ता नहीं देखता यानी गुण गुणों में वर्तते हैं, तीनों गुणों से बहुत परे सत् चित् आनन्द स्वरूप 'मुझ' परमात्मा को तत्व से जानते हैं उस वक्त वह पुरूष मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

20. यह पुरूष इस स्थूल शरीर के कारण तीन गुणों का उल्लंघन कर जन्म मरण बुढ़ापे और सब प्रकार के दुखों से मुक्त हो परम आनन्द को प्राप्त करता है।

21. इस तरह भगवान के रहस्य वाले वचन सुनकर अर्जुन ने पूछा हे पुरूषोत्तम इन तीन गुणों से अतीत पुरूष किन किन लक्षणों से युक्त होता है और किस प्रकार के आचरण वाला होता है ?हे प्रभु! मनुष्य किस उपाय से इन तीनों गुणों से अतीत है ?

22. भगवान बोले "जो पुरूष सतो गुणी कार्य रूपी प्रकाश को, रजो गुण की प्रवृति को और तमो के मोह को न तो प्रवृति होने को खराब समझता है न निवृति होने की इच्छा रखता है।

23. जो साक्षी स्थित तीन गुणों से विचलित नहीं होता, गुण गुणों में वर्तते हैं ऐसा समझते हैं जो सत्चित आनन्द परमात्मा में

एक भाव से स्थित रहता है किसी स्थिति से चलायमान नहीं होता है।

24. जो निरन्तर आत्मा में स्थित होकर दुखःसुख को समान समझता है। मिट्टी पत्थर सोने में समान भाव से रहता है और धीरजवान है, जो प्रिय अप्रिय को बराबर समझता है अपनी निन्दा स्तुति में समान भाव वाला हैं।

25. जो मान और अपमान में समान है मित्र–वैरी (दुश्मन) को समान समझता है किसी का पक्ष नहीं लेता है सब कर्मों के शुरूआत और कर्तापने के अभिमान से रहित वो गुणातीत कहा जाता है।

26. जो पुरूष अव्यभिचारी भक्ति योग से मेरा भजन करता है वो इन तीन गुणों का उल्लंघनकर सत्चित् आनन्द ब्रह्म रूप में एक रूप होने के योग्य है।

27. इस अविनाशी पारब्रह्म का, अमृत का, नित्य धर्म का और अखण्ड एक रस आनन्द का मैं ही आश्रय (सहारा, आधार) हूँ ऊपर कहाँ गया। ब्रह्म नाश न होने वाला हमेशा धर्म और अक्षय सुख ये सब मेरे ही नाम है इसलिये उन का मैं ही आधार हूँ।

तीन गुण का विभाग वाला योग अध्याय चौदह समाप्त हुआ

अध्याय पन्द्रहवां-पुरूषोत्तम योग

श्लोक 1 से 23

1. हे अर्जुन! ज्ञानियों ने इस संसार को एक अविनाशी पीपल के पेड़ के समान वर्णन किया है। आदि कारण, मूल कारण परमात्मा है जिस की जड़ उपर और डालियाँ नीचे है जिस के पत्ते वेद हैं जो मनुष्य इन को मूल सहित तत्व से जानते हैं वो वेद जानने वाला ज्ञानी है।

2. इस वृक्ष की शाखायें जो प्रकृति के त्रिगुणी माया से नीचे ऊपर फैली हुई है यानी तीनों गुण रूपी पानी के द्वारा बढ कर विषय भोगरूपी कोपलें यानी मुनी देव मनुष्य पशु–पक्षी इस की शाखाएँ नीचे ऊपर फैली हुई है जिसमें मनुष्य अहमता ममता और वासना रूपी जड़ से कर्म बन्ध में बन्द कर पूरे संसार में फैला हुआ है।

3. इस पीपल के वृक्ष के सच्चे स्वरूप का किसी को भी पता नहीं रहता इस के आदि अन्त, बीच का किसी को पता नहीं है। फिर ये संसार हमेशा स्थित रहने वाला नहीं है यानी ये क्षणभंगुर है इस अह्मता, ममता और वासना रूपी मजबूत जड़ वाले वृक्ष को वैराग्य रूपी तलवार से काटे।

4. इस परम पद को खोज कर जहाँ पहुँचा हुआ जीव वहाँ से वापस नहीं आता है। मैने इस आदि पुरूष की शरण ली है जिससे सारी सृष्टि शुरू से उत्पन्न होती है। इस प्रकार उस परमेश्वर का मनन करना चाहिए।

5. जिस के मन का मोह नाश हुआ है, जिसने अपने मन को जीत लिया है जिनकी परमात्मा में नित्यवृत्ति स्थित है, जिनकी कामनाएँ इच्छायें नष्ट हो गयी हैं, वे ही सुख दुख द्वन्द्व से मुक्त होकर अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं।

6. जहाँ सूर्य चाँद की रोशनी नहीं पहुँचती है जहाँ पहुँच कर फिर आवागमन में नहीं आता है वह मेरा परम् पद है।

7. मेरी नाश रहित शक्ति हर एक जीव में व्याप्त है। इस देह में सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है, जो इंद्रियों और मन का आकर्षण प्रकृति में रखता है उसको अपने तरफ आकर्षित करता है।

8, 9. जब यह जीव आत्मा एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है, तब–तब अपने साथ मन और इंद्रियों को ऐसे ले जाती है जैसे हवा खुशबू को ले जाये वो जीवात्मा कानों, आँखों, त्वचा, जीभ, नाक और मन के जरिये विषय भोगती है।

10. अज्ञानी मनुष्य जीव आत्मा को शरीर में रहते हुए या शरीर को त्याग करते हुए, या विषय को भोगते नहीं समझ सकते हैं परन्तु वह जिन को ज्ञान नेत्र प्राप्त हुये हैं वह ज्ञानी आत्मा को देखते हैं और जानते हैं।

11. अभ्यास से योगी अपने हृदय में स्थित आत्मतत्व को जानते हैं परन्तु जिस का अन्तःकरण शुद्ध नहीं है वह अज्ञानी पुरुष पुरुषार्थ करते भी आत्मा को नहीं जानते।

12. सूर्य चाँद तारों का तेज सारे संसार को प्रकाश करता है वह तेज मेरा ही जान।

13. धरती में प्रवेश करके मैं सभी धातुओं को आधार देता हूँ और अमृतमय चन्द्रमा से रस होकर सब बूटीयों (औषधियों) को बढ़ाता हूँ।

14. मैं प्राण वालों का प्राण (जठराग्नी) रूप होकर सभी प्राणियों के अन्दर रहता हूँ और प्राण अपान के रूप में चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

15. मैं ही सब प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ मुझ से ही स्मृति ज्ञान और विचार मेरे से ही होते हैं। और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ और वेदों को जानने वाला और रचने वाला भी मैं ही हूँ।

16. संसार में दो तरह की हस्ती हैं एक जीव आत्मा और दूसरी बाहरी देह जो पीछे नाश होती है यानी देह जो प्रकृति से बनी हुई हैं जीव आत्मा नाश नहीं होती।

17. परमात्मा नाशवन्त और अविनाशी दोनों से ऊपर है जो त्रिगुणी माया के प्रकृति के जर्रे–जर्रे में व्यापक है सब की पालना करता है। यानी सहारा बन के बैठे हैं वो परमात्मा स्वयं कायम है।

18. क्योंकि जड़ नाशवत और अविनाशी दोनों से मैं उत्तम हूँ उस के लिये लोकों में वेदान्त मैं पुरूषोत्तम नाम से प्रसिद्व हूँ।

19. जो ज्ञानवान मेरे को तत्व से पुरूषोत्तम करके जानते हैं वो तत्व से जानते हैं और हर काम में मेरी उपासना करते हैं।

20. जो इस अतिरहस्यमय ज्ञान को जानता है जो मैने तुमको बताया इसको तत्व से ज्ञानी जानता है फिर कुछ करने के लिये नहीं रहता और कृतार्थ हो जाता है।

पुरूषोत्तम योग वाला अध्याय पन्द्रह समाप्त हुआ

अध्याय सौलहवां -
दैवी आसुरी सम्पदा योग

1. भगवान ने कहा, "हे अर्जुन! दो प्रकार के स्वभाव बताता हूँ एक दैवी सम्पदा और दूसरा आसुरी सम्पदा के हैं। निर्भयता, अन्तःकरण की शुद्धि, तत्व का ज्ञान ध्यान में दृढ़ स्थिति (स्थिरता) सात्विक दान, इंद्रियों का दमन, भगवत् पूजा, अग्निहोत्र (हवन) आदि उत्तम कर्मों का आचरण वेदों शास्त्रों का पढ़ना स्वधर्म पालन करने के लिये कष्ट सहना और इंद्रियों सहित अन्तःकरण की सरलता–सत्य।

2. मन वाणी शरीर से किसी को भी कष्ट न देना, यथार्थ सरल भाषण, अपनी निन्दा करने वाले की भी बुराई या क्रोध न करना, कर्म में भी कर्तापने का अभिमान न करना, अन्तःकरण की निर्मलता चित की चंचलता का अभाव, निन्दा नहीं करना सब प्राणियों में स्वार्थ के बिना दया, इंद्रियों के विषयों के साथ सहयोग होने पर भी उनमें आसक्ति का न होना, कोमलता, लोक और शास्त्र के विरूद्ध लज्जा और बेकार की इच्छाओं का अभाव।

3. तेज, क्षमा, धीरज, बाहर अन्दर की शुद्धता क्रोधी स्वभाव का न होना, अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव होना ये सब दैवी सम्पदा के लक्षण गुण हैं।

4. पाखंड, दुम्भ, अभिमान, क्रोध, कठोर वाणी और अज्ञान ये सब आसुरी सम्पदा के लक्षण हैं।

5. इन दो प्रकार के सम्पदाओं में दैवी सम्पदा तो मुक्ति के लिये और आसुरी सम्पदा बांधने के लिये मानी गयी है। इसीलिये हे अर्जुन तू शोक मत कर तू दैवी सम्पदा का है।

6. हे अर्जुन–इस लोक में भूतों का स्वभाव दो प्रकार का माना गया है एक दैवों का दूसरा असुरों का, इसमें दैवों का स्वभाव विस्तार से कहा गया है अब तू आसुरों का स्वभाव मेरे से विस्तार से सुन।

7. हे अर्जुन! आसुरी स्वभाव वाला मनुष्य कर्तव्य कार्य में प्रवृत और अकृत्य कार्य में निवृत होना भी नहीं जानते इस लिये उनमें न अन्दर की न बाहर की शुद्धि है न श्रेष्ठ आचरण हैं न सत्य भाषण यानी सत्य बोलने की प्रवृति हैं।

8. हे अर्जुन! आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य कहा करते हैं कि जगत आधार रहित सर्वथा असत्य और बिना ईश्वर के आपने आप केवल स्त्री–पुरूष के संयोग से उत्पन्न है इसलिये सिर्फ भोग भोगना ही है इस के सिवा और क्या है ?

9. इस मिथ्या ज्ञान को मान कर जिस का स्वभाव नष्ट हो गया है जिसकी बुद्धि मन्द हो गयी है। ऐसे सभी का बुरा करने वाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत के नाश के लिये पैदा हुये हैं।

10. ऐसे मनुष्य दम्भ मान और मद से भरे हुये किसी तरह भी पूर्ण न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर, अज्ञानता से, मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके, अपने खराब संस्कारों और रहणी से संसार में विचरते हैं।

11. तथा मृत्यु तक रहने वाली अनंत चिन्ताओं को अन्दर में रख कर विषय भोग के भोगने में तत्पर होकर इसको ही आनन्द मानते हैं।

12. इसलिये आशा (इच्छा) रूपी करोड़ों फाँसियों में बंधे हुये मनुष्य काम क्रोध के वश में होकर विषय भोगों की पूर्ति के लिये जुल्म से धन और अनेक पदार्थ संग्रह करने की चेष्टा करते हैं।

13. ऐसे मनुष्य के विचार हैं कि आज मैने इस को प्राप्त किया और कल इस मनोरथ को भी प्राप्त करूंगा मेरे पास इतना धन है यह हमेशा रहेगा।

14. ये शत्रु को मैने मारा है, इन दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूँगा, मैं ईश्वर हूँ सभी भोगों को भोगने वाला हूँ, मेरे को सब सिद्धियां प्राप्त हैं मैं बलवान और सुखी हूँ।

15. मैं बड़ा धनवान कुटुम्ब वाला हूँ, मेरे जैसा और कोई नही होगा, मैं यज्ञ दान करूंगा, और खुशी को प्राप्त होऊँगा।

16. इसी तरह अज्ञान से लुभायमान, बहुत भ्रमों में फँस कर (अटक कर) चित्त वाले अज्ञानी, मोह रूपी जाल में फँस कर आसक्त होकर बड़े अपवित्र होकर नर्क में गिरते हैं।

17. वो अपने को बड़ा मानने वाले घमण्डी पुरूष धन और मान से भरपूर मद के नशे में शास्त्र विधि रहित सिर्फ नाम मात्र यज्ञों द्वारा पाखण्ड करते हैं।

18. वे अंहकार, बल, घमण्ड, कामना और क्रोधादि के वश (अधीन) होकर दूसरों की निन्दा करने वाले पुरूष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अन्तर्यामी से द्वेष करने वाले होते हैं।

19. उन द्वेष करने वालों को मैं पापी और खराब कर्मों वालों को संसार में बार–बार आसुरी योनियों में ही डालता हूँ सूअर, कुत्ता, नीच जूणियों में पैदा करता हूँ।

20. इसके लिये ये मूढ़ लोग जन्म–जन्म में आसुरी जूणियों को प्राप्त करते हैं मेरे को न प्राप्त करके उस से भी अति नीच जूणियों को प्राप्त करते हैं यानी घोर नरकों में पड़ते हैं।

21. काम, क्रोध, लोभ ये तीन नर्क के दरवाजे हैं आत्मा का नाश

करने वाले हैं अद्धोगति (बुरी गति) में ले के जाने वाले हैं, इस के लिये तीनों को त्याग करना चाहिये।

22. इन तीनों नर्क के दरवाजों से मुक्त पुरूष, काम, क्रोध, लोभ से छूटा हुआ पुरूष अपने कल्याण का आचरण करता है और परम् गति को प्राप्त करता है। यानी मुझ को प्राप्त करता है।

23. जो पुरूष शास्त्र विधि को त्याग कर अपनी इच्छा से चलता है वह न सिद्धि को प्राप्त करता है न ही परम् गति को और न ही सुख को प्राप्त होता है।

24. इसके लिये तुझे क्या करना चाहिये, क्या न करना चाहिये यह शास्त्र ही प्रमाण है ऐसा जानकर तू शास्त्र विधि से ही कर्म करने योग्य है।

ईश्वरीय और राक्षसी रूपी भाग वाला सौलह अध्याय समाप्त हुआ

अध्याय सत्रहवां-श्रद्धा योग वाला (श्रद्धा के तीन भेद)

1. इसी तरह अर्जुन ने भगवान को सुनकर सवाल पूछा – जो मनुष्य शास्त्र विधि का त्याग करके श्रद्धा से देवताओं की पूजा करते हैं उनकी स्थिति कैसी है क्या वे सात्विक है या राजसी या तामसी ?

2. श्री भगवान बोले," मनुष्य की बुद्धि शास्त्र रहित संस्कारों से, केवल स्वभाव से उत्पन्न श्रद्धा राजसी, तामसी, सात्विकी तीन प्रकार की होती है। इस को मेरे से सुन।

3. सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुसार होती है। ये श्रद्धा से भरपूर है जैसी श्रद्धा होती है, वैसे खुद होते है। जैसी उनकी श्रद्धा है वैसा स्वरूप होता है।

4. उनमें से सात्विक पुरूष देवताओं को पूजते हैं, राजसी पुरूष यक्ष ओर राक्षसों को, तामसी मनुष्य प्रेत ओर भूतो की पूजा करते हैं।

5. जो मनुष्य शास्त्र विधि से रहित केवल मन की कल्पना से घोर तपस्या करते हैं दम्भ और अंहकार से कामना आसक्ति और बल के अभिमान वाले हैं।

6. जो शरीर के पाँच महातत्वों को और उस में वास करने वाले अन्तर्यामी को कष्ट देते हैं उनको तू आसुरी स्वभाव वाला करके जान।

7. खाना भी तीन प्रकार वाला है सभी को अपनी प्रकृति के अनुसार प्यारा है इसी तरह यज्ञ, तप और दान भी तीन–तीन प्रकार के होते हैं उन को तू जान।

8. आयु, बुद्धि बल, आरोग्य सुख और भूख के बढ़ाने वाले रस युक्त अच्छे लगने वाले शरीर में बहुत वक्त (देर) तक जिसका सार रहता है ये भोजन सात्विक मनुष्य को अच्छा लगता है।

9. खट्टा, खारा, अति (बहुत) गरम मिर्ची वाले दाह कारक, छाती जलाने वाले, रोग पैदा करने वाले चिन्ता दुख को उत्पन्न करने वाला खाना ये राजसी गुण की निशानी वालों को प्रिय है।

10. आधा पक्का हुआ, रस रहित बासी जूठा पारूथा खाना स्वाद के बगैर गन्दा खाना तामसी अपवित्र लोगों को प्यारा है।

11. ऐसे ही जो यज्ञ शास्त्र विधि से, करना फर्ज समझता है ऐसा जान कर फल की इच्छा न रखते हुये जो यज्ञ उन से होता है वे सात्विक है।

12. जो यज्ञ मन में फर्ज दंभ और फल की इच्छा के उद्देश्य से किया जाता है वह राजसी यज्ञ है।

13. शास्त्र विधि से हीन, अन्नदान से रहित, मंत्रों के बिना, दक्षिणा और बिना श्रद्धा के किये जाने वाले यज्ञ को तामसी यज्ञ कहते हैं।

14. देवता, ब्राह्मण, गुरू ज्ञानी की सेवा पूजा जो करता है पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा यह शरीर का तप कहा जाता है।

15. जो विक्षेप न पैदा करे मीठी, प्यारी दूसरे के भले के लिये यथार्थ वाणी, वेद शास्त्र की अभ्यास वाली वाणी, परमेश्वर के अभ्यास की नाम वाली वाणी बोले ये वाणी का तप है।

16. मन की प्रसन्नता कोमलता, शान्त स्वभाव, शांत में रहना, मन को रोकना भगवत् चिन्तन करने का भाव, अन्दर की शुद्धता कष्ट न देना ये मन का तप है।

17. फल को न चाहने वाले निष्कामी योगी पुरूष द्वारा परम श्रद्धा से किए हुए तप को सात्विक कहा जाता है।

18. जो फायदे से और कीर्ति के लिये आडम्बर (दिखावे) के लिये किया जाता हैं, वो बेबका थोड़े समय के लिये लाभ देने वाला तप राजसी कहा जाता है।

19. जो तप बेवकूफी से, हठ से, मन वाणी और शरीर की पीड़ा सहन करके, दूसरों की बुराई करने के लिये किया जाता है वो तप तामसी तप कहा जाता है।

20. दान देना ही फर्ज है उस भाव से, जो दान देश काल पात्र देख कर, फल की इच्छा न रख कर करता है वो (सात्विक) दान है।

21. जो दान लाचार होकर तकलीफ से, फल को दिल में रख कर, बदले में अपना फायदा दिल में रखकर किया जाता है उसको राजसी दान कहा जाता है।

22. जो दान बिना सत्कार के, धिक्कार से बिना अधिकार के देश, काल, पात्र न देख कर शराब, माँस खाने वाले को चोर और नीच काम करने वालों को दिया जाता है उस को तामसी दान कहा गया है।

23. ऊँ तत्, सत् – ऐसे ये तीन प्रकार के ब्रह्म का नाम कहा है, उसी से सृष्टि के आदिकाल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये हैं।

24. इसलिये वेद मंत्रों का उच्चारण करने वाले श्रेष्ठ पुरूषों की शास्त्र विधि से नियत यज्ञ दान तपरूप क्रियाएँ सदा "इस परमात्मा के नाम को उच्चारण करके ही आरम्भ होती है।"

25. तत् अर्थात् 'तत' नाम से कहे जाने वाले परमात्मा ही सब है

इस भाव से फल को न चाहकर अनेक प्रकार यज्ञ तप रूप क्रियाएँ दान, कल्याण की इच्छा वाले पुरूषों द्वारा की जाती है।

26. सत् ऐसे परमात्मा का नाम सत् भाव से श्रेष्ठ भाव से प्रयोग किया जाता है उत्तम कर्म में भी सत् शब्द का प्रयोग किया जाता हैं।

27. 'यज्ञ, तप दान में जो स्थित है वो सत्त है ऐसे कहा गया है इस परमात्मा के अर्थ के लिए किया गया कर्म निश्चय से सत् है ऐसे कहा गया है।

28. बिना श्रद्धा के हवन दिया हुआ दान कष्ट देने वाले तप सब असत्त् ऐसे कहा गया है इसलिये वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के बाद ही।

29. इसलिये मनुष्य को चाहिये कि सत् चित आनन्द परमात्मा के नाम का स्मरण करते निष्काम भाव से सिर्फ परमेश्वर के लिये शास्त्र विधि से किये हुये कर्म श्रद्धा से उल्लास से पूरी करे।

श्रद्धा योग वाला सत्रह अध्याय समाप्त हुआ

अध्याय अठारहवां-मोक्ष सन्यास योग

1. अर्जुन बोले हे भगवान! मेरे को सन्यास और त्याग के तत्व को पृथक–पृथक (अलग) खुली तरह से समझाओ।

2. कृष्ण बोले "कितने ही लोग समझते हैं जो कर्म कामना से किया जाता है, उसके त्याग को सन्यास कहते हैं दूसरे विचार वाले (सियाने) पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं।

3. कई विद्वान कहते हैं कि कर्मों में दोष है, इसलिये त्यागने योग्य है और दूसरे विद्वान कहते हैं यज्ञ दान,और तपरूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं।

4. हे अर्जुन! सन्यास और त्याग (सन्यास और त्याग) इन दोनों विषयों में से पहले त्याग विषय में मेरा अनभुव सुन त्याग तीन प्रकार का है सात्विक, राजसी, तामसी।

5. यज्ञ, दान, तप कर्म त्यागने योग्य नहीं हे परन्तु ये निश्चित करना चाहिये कि ये शुभ कर्म विचारवान के हृदय को पवित्र करते हैं।

6. इसके लिये हे अर्जुन, यज्ञ, दान, तप, शुभ कर्म, आसक्ति मोह और फल की इच्छा छोड़कर करने चाहिये यह मेरा निश्चय है, यही मेरा मत है।

7. हे अर्जुन, स्वाभाविक कर्म छोड़ना नहीं चाहिये मोह के (अज्ञान) कारण उसका त्याग कर देना तामसी त्याग कहा गया है।

8. जो मनुष्य कर्म को दुखरूपी कठिन समझकर तकलीफ से बचने के डर से नहीं करता है यह रजो गुणी त्याग है, इसको त्याग करने का फल नहीं मिलता।

शास्त्र विधि से कर्म करना कर्तव्य है मोह रहित फल की इच्छा रहित करने से सतोगुणी त्याग कहा गया है।

0. शुद्ध सतोगुणी बुद्धिवान त्यागी जिस के सभी भ्रम दूर हो गये हैं वो शुभ कर्म में मोह नहीं रखता है और खराब कर्मों से "नफरत नहीं करता"।

1. शरीरधारी मनुष्य सब कर्मों का त्याग नहीं कर सकता इसलिये जो मनुष्य कर्मो के फल का त्यागी है वो ही त्यागी है,

2. सकामी मनुष्य का फल अच्छा या बुरा मरने के बाद भी मिलता है। और कर्म फल के त्यागी मनुष्य को कर्मों का फल कभी नहीं मिलता इसलिये हकीकत में उस का कर्म, कर्म ही नहीं है।

3. हे अर्जुन–अब मैं तुझको पाँच कारण बताता हूँ जो साँख्य योग में है उस के द्वारा सब काम सिद्ध होते हैं।

4. (1) देश (आधार), (2) स्थूल शरीर, (3) कर्ताकरण यानी (साधना), इन्द्रियां जिस से कर्म होता है (4) क्रिया (चेष्टाएं) (5) दैव ये कर्म सिद्ध होने के पाँच साधन है।

5. मनुष्य मन वाणी और शरीर से शास्त्रानुकूल अथवा विपरीत जो कुछ भी कर्म करता है उसके ये पाँचों कारण हैं।

6. ऐसा होने पर भी अशुद्ध बुद्धि वाले मनुष्य आत्मा को कर्ता समझते हैं ऐसे मलिन बुद्धि वाला अज्ञानी यथार्थ नहीं समझता है।

17. जिस पुरूष में अपने किसी भी कर्म का कर्ता भाव नहीं है जिस की बुद्धि निर्मल है जो कर्म में लिपायमान नहीं होता है ऐसा पुरूष सभी लोकों को मारकर भी वास्तव में न तो मारता है न उस मनुष्य को पाप लगता है (क्योंकि करतापणा, देह अभिमान से रहित है।)

18. ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय (जानने वाला, जानकारी, जानने योग वस्तु) तीनों कर्मों का कारण है, करता कर्म क्रिया, कर्म का करने वाला, कर्म का बनना, जिससे कर्म हो इन तीनों के मिलाप से काम सिद्ध होता है।

19. गुण संख्या शास्त्र में ज्ञान, कर्म, कर्ता (जानना, कर्म और कर्म को करने वाला) तीन गुणों के अनुसार तीन प्रकार के कहे गये हैं ये तू मेरे से अच्छी तरह ले।

20. जिस ज्ञान से सभी प्राणियों में एक ही अविनाशी आत्मा समभाव से देखता हैं वह उत्तम ज्ञान है उस को सात्विक ज्ञान जान।

21. जिस ज्ञान से सब प्राणियों में अलग–अलग भावों से देखता है वो रजो गुणी ज्ञान है।

22. जिस ज्ञान से एक शरीर में बिना समझ के परमेश्वर देखता है (आत्मा) उस में आसक्त रहता है वो गलत है उस को तामस कहा गया है।

23. जो कर्म शास्त्र विधि से नियम से कर्तापने के अभिमान रहित हो तथा फल न चाहने वाले पुरूष द्वारा बिना राग–द्वेष के किया गया हो वह सात्विक कहा गया है।

24. जो कर्म फल की इच्छा और अंहकार से बहुत मेहनत से करता है वो रजो गुणी कर्म है।

25. जो कर्म बिना सोच विचार के मोह रहित दूसरों को नुकसान पहुँचाने के इरादे से किया गया हो और अपनी ताकत के विचार के बगैर करते हैं वो तमोगुणी कहा जाता है।

26. जो कर्म (काम का करने वाला) मोह और अंहकार से रहित धीरज और हिम्मत से हार–जीत और हर्ष–शोक में समान रहता है वो सतोगुणी करता है।

27. मोह वाला, इच्छाधारी, लोभी, बेरहम् नापाक और हर्ष शोक करता है वो रजो गुणी कर्ता है।

28. विक्षेप, चंचल चित वाला, कम अक्ल, जिद्दी, नीच, ढोंगी आलसी (कल काम पूरा करेगा) दूसरे की बुराई करने वाला ये तमो गुणी कर्ता है।

29. हे अर्जुन! बुद्धि और धीरज का भी गुणों अनुसार तीन प्रकार के माने गयें हैं उन का तू अलग–अलग विस्तार से सुन

30. जो बुद्धि प्रवृति मार्ग निवृति मार्ग और मोक्ष बन्धन और भय निर्भय का भेद जानती है वे सात्विक बुद्धि हैं।

31. हे अर्जुन! जो बुद्धि धर्म–अधर्म, प्रवृति निवृति के भेद को नहीं जानती वो रजो गुणी बुद्धि जान।

32. हे अर्जुन! जो बुद्धि अज्ञानता से अधर्म को धर्म समझती है इसी प्रकार सब बातों को विपरीत मान लेती है वो तामसी बुद्धि जान।

33. सात्विक धीरज धारणा से मनुष्य मन प्राणी और इंद्रियोकी क्रियाओं को वश में रखकर एक चित एकाग्र बुद्धि से ध्यान योग करता है।

34. जिस धीरज (धारणा) से मनुष्य अपनी इच्छा पूरी करता है, धमार्थ कामों को धारण करता है वो रजो गुणी धीरज हैं।

35. जिस का धीरज कच्चा है जिसके कारण नींद भय निराशाई और हठ नहीं छोड़ता वो तमोगुणी धीरज है।

36,37. अब तीन प्रकार का सुख भी तू मुझ से सुन जो सुख अभ्यास से प्राप्त होता है और दुख को निवृत करता है जो सुख आरम्भ काल में विष के तुल्य प्रतीत होता है परन्तु

परिणाम में अमृत के तुल्य है वो आत्म ज्ञान की खुशी से उत्पन्न होता है वो सात्विक सुख है।

38. जो सुख विषय और इंद्रियों के संयोग से पहले अमृत तुल्य फिर परिणाम में विष के तुल्य है वो रजो गुणी सुख है।

39. जो सुख शुरू में और अन्त में बेहोश (मोहित) करता है वो निद्रा आलस्य, गफलत ऐश इशरत से उत्पन्न होता है वो तमोगुणी सुख है।

40. पृथ्वी या आकाश में अथवा देवताओं में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो प्रकृति के तीनों गुणों की माया से छूटा हुआ होवे।

41. ब्राह्मण क्षत्रीय और वेश्यों के तथा शुद्रों के कर्म प्रकृति के गुणों से बँटा हुआ है।

42. मन इंद्रियों को रोकना पवित्रता, तप करना, धर्म के लिये कष्ट सहना, सरलता परमात्मा में पूर्ण विश्वास परमात्मा तत्व का अनुभव करना शास्त्रों का ज्ञान ये सब ब्राह्मण के धर्म है।

43. वीरता, जोश, तेज, धीरज, चतुरता, और युद्ध से न भागना, दान देना, राज करना, सब की भलाई में रहना शास्त्रों के अनुसार राज करना प्रजा को बालकों जैसा समझना ये सब के सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म है।

44. खेती करना, पशु का पालन और सच्चाई से व्यवहार ये वैश्य के कर्म है सब वर्णों की सेवा करना शुद्र का कर्तव्य है।

45. अपने–अपने स्वाभाविक कर्म करने से मनुष्य भगवत् प्राप्ति रूप परम् सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। अपने स्वाभाविक कर्मों में लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार से कर्म करके परम् सिद्धि को प्राप्त होता है, वो तू मेरे से सुन।

46. जिस परमात्मा से सब की उत्पति हुई है जो सारे जगत में व्याप्त है उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके परम सिद्दि को प्राप्त करता है जैसे पतिव्रता स्त्री पति की आज्ञा में ध्यान में रहती है।

47. पर धरम की पालना करना सरल होवे तो भी अपना धर्म गुण हीन भी अच्छा है अपने वर्ण अनुसार काम सच्चाई से करने से कोई भी पाप नहीं लगता।

48. हे, अर्जुन! जिस का जो भी धर्म होवे वो चाहे कितना भी नीच होए उस को छोड़ना नहीं चाहिये क्यों कि सभी कर्मो में कोई न कोई दोष है जैसे अग्नि में धुँआ है।

49. मोह और इच्छा रहित मन को जिस ने वश में किया है सन्यास से वो निष्कर्म रूपी परम् सिद्धि को प्राप्त होता है।

50. निष्कर्म सिद्दि को प्राप्त कर आत्म ज्ञान से जिस रीति में वो ब्रह्म में लीन हो जाता है (ब्रह्म को प्राप्त) उस को तू मुझसे संक्षेप में सुन (समझ)

51,52. जिस की बुद्धि शुद्ध है, एकान्त और शुद्ध स्थान पर बैठता है, अल्प आहारी, मन को वश में रख कर वैराग्य में रहता है हर समय ध्यान में रहता है, सतोगुणी धीरज से मन को रोक कर शब्दादि विषयों को त्यागकर प्यार और धिक्कार (नफरत) को छोड़ता है।

53. बल अंहकार, बड़ाई, काम, क्रोध, मोह, छोड़ ममता रहित शान्त हो कर ब्रह्म भाव में लीन होने का अधिकारी है।

54. ऐसा जो ब्रह्म में लीन होकर आनंद को पा लेता है उस को न तो किसी के लिये शोक होता है न तो किसी वस्तु के लिये कामना होती है। सारी सृष्टि में एक आत्मा देखता है मेरी परम् भक्ति को प्राप्त करता है।

55. ऐसा अपने सच्चे प्रेम द्वारा वह मुझ को जान लेता है और मेरे को तत्व से जान कर मुझ में लीन हो जाता है। उस की दृष्टि मुझ वासुदेव के सिवा दूसरा कुछ नहीं देखती।

56. निष्कामी कर्म योगी जो मेरी शरण में आता है वो सब कर्म करते हुए भी मेरी कृपा से अमर अविनाशी परम पद को प्राप्त हो जाता है।

57. तू सब कर्मों को मन से मुझमें अर्पण करके मुझ में लीन रह समता योग निष्काम कर्म योग अनुसार निरन्तर ध्यान करके मुझ में लीन हो।

58. मुझ में चित्त लगाकर मेरी कृपा से जन्म मृत्यु अनेक दुखों से पार हो जायेगा परन्तु अगर तू अंहकार से मेरी नहीं सुनेगा (वचनों को नहीं सुनेगा) तो नष्ट हो जायेगा अर्थात परमार्थ से भ्रष्ट हो जायेगा।

59. अंहकार की वजह से अगर कहेगा कि मैं लड़ाई न करूंगा तो तू भूला हुआ है। क्योंकि तेरा क्षत्रीय धर्म का स्वभाव तुझे जर्बदस्ती युद्ध में लगा देगा।

60. जो कर्म तू मोह और अंहकार के कारण नहीं करना चाहता वह भी स्वभाव के वश होकर करना पड़ेगा।

61. आत्मा परमात्मा सब प्राणियों के ह्रदय में स्थित है जो माया के बल से उनको कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता रहता है।

62. तू हर प्रकार से उस आत्मा परमेश्वर की शरण में आ उस परमात्मा की कृपा से तू परम पद को प्राप्त कर सकेगा।

63. इस प्रकार ये गोपनीय से अति गोपनीय ज्ञान मैने तुम को दिया पहले तुम इस को अच्छी तरह समझ (विचार) फिर जैसे तुम चाहता है वैसे ही तुम कर।

64. अर्जुन चुप रहा फिर कृष्ण भगवान ने कहा यह गोपनीय से अति गोपनीय ज्ञान तेरे को सुनाता हूँ क्योंकि तू मेरा परम अतिशय प्रिय है।

65. हे अर्जुन! तू मुझ में मनवाला हो, मेरा भक्त बन मेरा पूजन करने वाला और मुझ को प्रणाम कर, ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।

66. सभी धर्म कर्मों का त्याग करके एक आत्मा की ही शरण में आ जा मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त करूँगा तू शोक मत कर।

67. जो तपस्या और भक्ति रहित और जो न सुनना चाहे और जिसको श्रद्धा और विश्वास न हो जो मुझ में दोष दृष्टि रखता हो उससे तो कभी भी ज्ञान नहीं कहना चाहिये और जो प्रेम और उत्साह से ज्ञान सुने तो उसे सुनायें

68. जो पुरूष परम प्रेम करके मेरे भक्तों में निष्काम भाव से प्रेम से कहेगा वो मेरे प्रेम भक्ति को प्राप्त होगा उस में लीन होगा।

69. इस से बढ़कर कोई भी सेवा न ही है नही कोई सेवाधारी है इस पृथ्वी भर में उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई नहीं है।

70. जो मनुष्य सवाल जवाब (उत्तर प्रश्न) करेगा उस पर अभ्यास करेगा जिससे ज्ञान पैदा हो वो इस तरह मुझे पा सकेगा ये मेरा वचन है।

71. जो मनुष्य श्रद्धा विश्वास दोष दृष्टि रहित हो कर इस ज्ञान को सुनेगा वह पापों से मुक्त होकर उत्तम कर्म करने वालों में गिना जायेगा और देवलोक में जायेगा।

72. तू ने ये मेरा वचन एकाग्र चित्त से सुना या नहीं ? तेरा अज्ञान मोह नाश (नष्ट) हो गया या नहीं ?

73. अर्जुन बोले, हे अच्युत आप की कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया मैने अपने आप को पहचाना अब मैं संशय रहित होकर आत्मा में स्थित हूँ अब जो आप आज्ञा करोगे मैं पालन करूँगा।

74. संजय ने कहा, इस प्रकार मैने श्री कृष्ण भगवान और अर्जुन की अद्‌भुत रहस्य युक्त और रोंगटों को खड़ी करने वाली रोमांचकारी बातें सुनी।

75. मैने व्यास मुनि की कृपा से इस परम् गोपनीय ज्ञान को सुना जो श्रीकृष्ण भगवान ने अपने मुख से अर्जुन को सुनाया।

76. इस रहस्य युक्त अद्‌भुत संवाद को पुनः पुनः स्मरण करके मैं बार–बार हर्षित हो रहा हूँ।

77. हे राजन! श्री कृष्ण भगवान के अत्यन्त विलक्षण रूप को पुनः पुनः स्मरण करके मेरे को बहुत आनन्द आ रहा है। जहाँ पूर्ण पुरूष श्री कृष्ण भगवान है और धनुषधारी अर्जुन है मुझे विश्वास है कि वहीं पर विजय, विभूति और अचल नीति है। ऐसा मेरा मत है।

मोक्ष सन्यास योग वाला अध्याय अठारहवां समाप्त हुआ

मुख्य श्लोक

अध्याय 2-मुख्य वचन

1. बुद्धिमान मनुष्य जीते हुये का, न ही मरे हुये का शोक (दुख) करते हैं।

7. मैं आपका शिष्य हूँ मुझे सलाह दे मैं आपके शरण आया हूँ।

12. तू मैं और ये सब पहले भी थे इसके बाद भी होगे (आत्मा सदा है)।

16. सत्य का कभी अभाव नही है असत का कभी भाव नहीं है सच्चे ज्ञानी को सत असत की पहचान होती है।

20. आत्मा न मरता है न मारता है नहीं देखने में आता है नहीं जलता है नहीं सड़ता है नहीं सूख सकता है।

22. जैसे एक वस्त्र उतार कर दूसरा पहनते हैं वैसे जीव आत्मा पुराना (झूना) वस्त्र त्याग कर नया वस्त्र धारण करती है।

29. कोई आत्मा को आश्चर्यवत् समझता है कोई देखता है कोई वर्णन करता है, कोई सुनता है, कोई जानता है, कोई सुनता भी है और फिर भी जानता नहीं है।

32. क्षत्रिय धर्म वाले को अनचाही भी युद्ध करनी है जो सामने आती है। नहीं करेगा तो अपकीर्ति होगी जो मरण से भी बढ़कर होगी।

40. थोड़ा भी निष्काम का बीज नाश नहीं होता उल्टा विपरीत फल रूप का पाप भी नहीं लगता थोड़ा भी कर्म योग का आरम्भ जन्म मरण के महान भय से बचा लेता है।

41. निश्चयात्मक बुद्वि एक ही होता है। सन्शयात्मक बुद्धि वाले की अनेक बुद्धियाँ और अनन्त खयाल हैं।

42. कर्म कांडी वेद वादी समझते हैं कि स्वर्ग ही लक्ष्य है जो मुक्ति को नहीं जानते वे भोगों के लिये कर्म करते हैं मीठी वाणी बोलते हैं।

45. वेदों में तीन गुणों का वर्णन है पर तू त्रिगुणातीत ये गुणों से अलग न्यारा हो योग क्षेम को न चाहने वाला हो जा।

46. जो वेदों में है वो ज्ञानी को आत्मा से प्राप्त होता है। ब्रह्म को जानने वाले को वेदों की जरूरत नहीं होती।

49. समता योग से सकामी कर्म जो निम्न श्रेणी का है उसका तू त्याग कर।

52. जब तेरी बुद्धि मोहरूपी दल–दल को पार कर जायेगी, उस समय तू सुने हुये और सुनने में आने वाले सभी भोगों से बेपरवाह हो जाओगे।

53. शास्त्र सिद्वान्त के मतों में विचलित तेरी बुद्वि जब समाधि में स्थिर और अचल होगी तब तुम समता योग में आयेगा (प्राप्त करेगा)।

58. जैसे कछुआ सब ओर से अपने अंगो को समेट लेता है वैसे ही जब यह पुरूष अपनी इंद्रियों को सब प्रकार हटा लेता है आत्मा से आत्मा में संतुष्ट रहता है। वो स्थिर बुद्धि जान (होती है)।

59. शरीर को बाहर से विषयों से दूर रखने पर भी मन से विषयों का रस नहीं जाता, परन्तु स्थिर बुद्धि वाला तृष्णा को निकाल फेंकता है। आत्म साक्षात्कार करके हर कर्म में ज्ञान रख।

64. प्रकृति को वश में रखकर विषयों के बीच में रहते जिस का चित शान्त रहता है वो ही सच्चा योगी है।

69. जहाँ अन्य प्राणियों के लिये रात्रि है योगी के लिये दिन है (योगी जागता है) जहाँ अन्य प्राणियों के लिये दिन है वहाँ योगी के लिये रात्रि है।

70. जैसे अनेक नदियाँ सब ओर से परिपूर्ण समुद्र के बीच चिन्तन न करते हुये ही समा जाती है। वैसे ही सब भोग स्थित प्रज्ञ पुरूष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना समा जाते हैं।

अध्याय 3-मुख्य वचन

3. इस लोक में दो प्रकार के निश्चय मेरे द्वारा पहले से कहे गए है एक सांख्य योग जो ज्ञान से निश्चय दूसरा कर्म योगी जो निष्काम कर्म से निश्चय।

4. कर्म छोडने से निष्कामी नहीं होता न तो मुक्ति ही मिलती है निष्काम कर्म के आरम्भ के बगैर ज्ञान का निश्चय नहीं होता नहीं छोडने से कर्म योगी होगा।

5. कर्म करने के सिवाय एक क्षण भी नहीं रह सकता प्रकृति इस से जरूर (अवश्य) कर्म करायेगी।

6. जो मनुष्य समस्त इन्द्रियों को हठपूर्वक बाहर से रोककर, मन से उन इंद्रियों का चिन्तन करता रहता है वो दम्भी पाखंडी है।

7. परन्तु जो मनुष्य मन से इंद्रियों को वश मे रख कर विषयों की आसक्ति छोड कर निष्काम कर्म में व्यस्त है वो ही सच्चा कर्म योगी है। शरीर का निर्वाह बिना कर्म के नहीं होगा।

11. सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ने यज्ञ की रचना करके कहा आप देवाताओं की सेवा करो देवता बिना मांगे ही भोग देंगे।

12. जो दिये बिना भोगेगा वो चोर है जो अपने लिये पकाता है वो पापी है यज्ञ में से बचा हुआ अन्न खाने से मुक्ति हो जायेगी।

13. यज्ञ में जो सेवा नहीं करता वो जन्म गँवाता है।

17. जो आत्मा में स्थित है संतुष्ट है उसके लिये कोई भी काम जरूरी नहीं है वो करे या न करे है स्वार्थ के बगैर।

21. ज्ञानी लोक संग्रह के लिये कर्म करते हैं दूसरे देख कर वैसे-वैसे आचरण करते हैं नहीं तो वे आलसी सुस्त हो जायेंगे।

26. ज्ञानी किस को भी कर्म में अश्रद्धा उत्पन्न करके भ्रम में नहीं डालते।

28. जो समझते हैं गुण–गुण में वर्त रहे हैं मैं कुछ नहीं कर्ता वो ज्ञानी है।

33. सभी प्राणी अपने स्वभाव परवंश हुये कर्म करते हैं ज्ञानी भी अपने स्वभाव वस चलते हैं फिर इसी में किसी का हठ क्या करेगा?

35. दूसरे का धर्म भले ही उत्तम हो अपना धर्म गुण रहित होवे तो भी दूसरे का धर्म पालन करने से मरना बेहतर है दूसरे का धर्म पालन भय को देने वाला है।

38. जिस प्रकार धुएँ से अग्नि और गर्भ में बच्चा और दर्पण को मैल ढक देती है वैसे ही इस ज्ञान को काम ढक देता है।

42. इन्द्रियों से उपर मन है, मन से बुद्धि है, बुद्धि से आत्मा श्रेष्ठ है अतः मन को आत्मा से वश कर।

अध्याय 4-मुख्य वचन

ये योग पुरातन है सनातन है आदि से चलते आ रहा है मैने सूर्य (सूर्यवंशी) राजाओं को सुनाया सूर्य देव ने वैवस्वान् मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को सुनाया ये ही योग मैं तुझे सुनाता हूँ :–

4. अर्जुन बोले आप का जन्म तो अभी हुआ है तो कैसे समझू कि आदि से ही आप ने कहा है सूर्य से यह योग?

5. कृष्णा ने कहा तुम्हारे मेरे बहुत से जन्म हो चुके है उन सब को तुम नहीं जानते किन्तु मैं जानता हूँ।

7. जब–जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब–तब मैं साधु पुरूषों का उद्धार करने के लिये पाप को नाश करने के लिये धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिये युग–युग में प्रगट होता हूँ।

9. मेरा जन्म दिव्य और कर्म दिव्य ऐसे जो जानता है वो फिर जन्म मरण में नहीं आता।

13. गुण और कर्म से चार वर्ण मेरे द्वारा रचे गये हैं उस सृष्टि रचनादि कर्म का कर्ता होने पर भी मुझ को तू अकर्ता ही जान।

18. कर्म में अकर्म, अकर्म में कर्म जो देखता है, योगी सब कर्मों का करने वाला है।

19. जिस के कर्म ज्ञान अग्नि में भस्म हो गये हैं उस को सच्चा पण्डित कहते हैं

33. ध्यान से ज्ञान उत्तम है, और सब यज्ञो से ज्ञान यज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ हैं।

36. कैसा भी महापापी होवे तो भी ज्ञान के नाव से तैर कर पार पहुँच जायेगा।

40. श्रद्धा रहित अज्ञानि संशय वाला होता है वो भ्रष्ट (नाश) जान श्रद्धावान लभते ज्ञानम्।

42. अज्ञानी संशय को ज्ञानरूपी तलवार द्वारा नाश करके निष्काम होकर युद्ध के लिये खड़ा होता है।

अध्याय 5-मुख्य वचन

1. कर्म योग और कर्म सन्यास में से कल्याणकारी क्या है ?

2. दोनों कल्याणकारी हैं परन्तु कर्म योग कर्म सन्यास से ज्यादा श्रेष्ठ और साधन में सुगम है।

3. जो मनुष्य वैर विरोध कामना से दूर है वो सच्चा सन्यासी है।

4. अज्ञानी, ज्ञान, (कर्म सन्यास) और निष्काम को अलग–अलग समझता है परन्तु ज्ञानी ऐसे नहीं समझते जो एक में पक्का है वो दोनों का फल पा लेता है।

5. ज्ञान योगी ज्ञान से निष्काम कर्म योगी निष्काम से वो ही पद प्राप्त कर लेता है।

6. निष्काम कर्म योग के बिना सन्यास अर्थात मन इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने वाले कर्मों में कर्ता पने का त्याग कठिन है।

9. ज्ञानी देखते, सुनते, खाते, आंखे खोलते हुये और स्वांस लेते हुये ऐसा समझता है कि इन्द्रियाँ अपने अपने अर्थों में बरत रही है मैं उनसे न्यारा हूँ मैं कमल के फूल के समान न्यारा हूँ।

13. संयम वाला कर्म योगी नवद्वार वाले शरीर में रहते हुये भी निर्लेप रहता हैं योगी न कर्ता है न करवाता है वो साक्षी है।

14. परमात्मा न ही करतापने को न ही कर्मों को न ही कर्मों के फल को रचता है किन्तु स्वभाव ही वरत् रहा है।

15. परमात्मा पाप कर्म या शुभकर्म को नहीं ग्रहण करता है परन्तु अज्ञान ज्ञान को ढक कर मोह वश कर्म और फल प्रकृति का खेल है जैसे करनी वैसे भरनी इसमें परमात्मा को कोई दोष नहीं है।

18. सच्चा ज्ञानी ब्राह्मण, हाथी, कुत्ते, चण्डाल, गौ में एक ही आत्मा देखते हैं।

23. मृत्यु के पहले ही जिसने काम क्रोध के वेग को वश किया वह आत्मा में रमण करने वाला आत्मा में तृप्त रहने वाला सब में भलाई करने वाला वो ही परमात्मा में स्थित है।

29. मेरा भक्त मुझ को सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला सम्पूर्ण लोंको के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा दयालु और प्रेमी ऐसा तत्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

अध्याय 6-मुख्य वचन

1. सिर्फ बाहर के कर्म छोडने से अन्दर संकल्प नहीं त्यागता है वो योगी नहीं है परन्तु जो कर्म फल इच्छा छोडकर जो निष्काम कर्म करता है वो सच्चा सन्यासी सच्चा योगी है।

6. जिस ने इंद्रियों के साथ शरीर को जीता है वो अपना आप मित्र है जिसने नहीं जीता है वो अपना आप शत्रु है।

5. हर एक अपना आप उद्धार करे बुरी गत न करे जो आत्मा से दूर है वो अपना दुश्मन आप है।

10. मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में रखकर आशा रहित अकेला एकान्त में स्थित होकर आत्मा को परमात्मा में लगाता है।

11से14. शुद्ध भूमि में निर्मल आसन्न लगाकर मृगछाला स्थिर कर न ऊँचा न बहुत नीचा हो इन्द्रियों को वश में रखकर मन को एकाग्र कर के अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योग अभ्यास करता है काया, सिर और गले को स्थिर रख कर अपनी नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि जगाकर अन्य दिशाओं को न देखता हुआ ब्रह्मचारी के व्रत में स्थित भय रहित शान्त अन्तःकरण वाला सावाधान योगी मन को रोक कर मेरे में चित्त रखता है और मेरे परायण होकर स्थित है और आत्मा को निरन्तर मुझ में परमात्मा स्वरूप में लगाता हुआ शान्ति को प्राप्त होता है।

(अर्थ – शुद्ध भूमि वो है जहाँ कोई भी देह अध्यासी न होवे जहाँ कोई आत्मा न भूले जहाँ शान्त वातावरण होए कोई खींचने वाला न हो निर्मल आसन जहाँ जावे तो अपनी चादर ले के जावे खुद रख कर बैठे देखे नहीं कि कोई कुर्सी देवे तो बैठे कहाँ बैठे यहाँ वहाँ न देखें एक चित्त मन आत्मा में लगाने मन इन्द्रियों में चंचलता न हो स्थिर बैठे मन इन्द्रियों रोक कर आत्मा में लगाये तो उसका सहज परमात्मा से मिलाप हो जाता है।)

16. ये योग न बहुत खाने से न ही उपवास से न ही ज्यादा नींद से न ही जागरण से परन्तु जो पूरा खावे पूरा सोये सब पूरा नित नियमों से है उसका योग सिद्ध होता है।

22. ज्ञानी महाभारी दुख में भी आत्मा को न विसारे (को नहीं भूलता है) ये योग धीरज और उमंग उत्साह वाले चित से निश्चय से होता है। जहाँ–जहाँ मन दौड़े वहाँ से हटा के आत्मा में जोड़ें।

33. मन बहुत चंचल वायु से तेज बडा दृढ बलवान है कैसे रोकूँ ?

35. सच है मन को रोकना मुश्किल है परन्तु अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है।

37. जो योग में श्रद्धा रखने वाला है किन्तु संयमी नहीं है योग में विचलित हो गया है वो कौन सी गति को प्राप्त होता है वो दोनों तरफ से नाश तो नहीं होता योग से भ्रष्ट होकर कहाँ भटकता है?

40. कल्याण मार्ग में जा चलते हैं उनकी दुर्गति नहीं होती इस लोक में चाहे परलोक में नाश नहीं होता योग भ्रष्ट को दूसरा जन्म पवित्र सुखी परिवार में या ज्ञान योगी के घर में मनुष्य जन्म मिलता है पिछले जन्म की स्मृति है परन्तु मोक्ष के लिये आता है वो सच्चा जिज्ञासु है कर्म कांड से बडा पद प्राप्त करता है पुरूषार्थ करके परम् गति को प्राप्त करता है। वो योग युक्त होता है

44. पंडितों और सकामी कर्म कांड करने वालों से योग भ्रष्ट श्रेष्ठ हैं।

अध्याय 7-मुख्य वचन

2. ये ऐसा गूढ तत्व ज्ञान कहूँगा जिनको जानकर संसार में फिर और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रह जाता।

3. हजारों में कोई एक मेरे प्राप्ति के लिये यत्न करता है और उनमें से भी कोई यत्न करने वाले में भी एक मेरे को तत्व से अर्थात् यथार्थ रूप से जानता है।

4. एक मेरी जड़ प्रकृति आठ प्रकार की है पाँच तत्व मन बुद्धि अहकार ये अपरा प्रकृति है दूसरी जीव रूपी परा प्रकृति चेतन प्रकृति है, जिससे सारा संसार धारण किया हुआ है बस भूत प्राणी दोनो प्रकृतियों से पैदा हुये हैं पूरे जगत का मूल कारण मैं हूँ।

7. यह सम्पूर्ण जगत सूत्र में सूत्र के मणियों के जैसे मुझ में गुँथा हुआ है।

11. सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात शास्त्र के अनुकूल काम श्री मैं ही हूँ।

12. तीन गुण मेरे में से है परन्तु उन गुणों में मैं फँसा हुआ नहीं हूँ।

14. इस माया से तैरना कठिन है परन्तु जो पुरूष मेरे ध्यान में रहता है वो माया को सुगमता से पार कर जाता है (तैर जाता है)

16. चार तरह के भक्त मुझ को ध्याते हैं एक अर्थाथी, दूसरे रोगी, तीसरे जिज्ञासु, चौथे ज्ञानी निष्कामी इन सब से ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है भक्त मेरे सब श्रेष्ठ हैं परन्तु ज्ञानी तो मेरा ही रूप हैं क्योंकि ज्ञानी तो मेरे में ही निवास करता है बहुत जन्मों

के अन्त में ब्रह्म ज्ञानी को प्राप्त करके सब कुछ वासुदेव ही है ऐसे जानने वाला अति दुर्लभ है।

21से23. जो देवताओं में श्रद्धा रख कर पूजा करता है उनकी मनोकामना मैं पूरी करता हूँ परन्तु ये अल्प बुद्धि वाला नाशवान फल प्राप्त करता है देवताओं के पुजारी देवताओं को प्राप्त करता है मेरा भक्त मेरे को प्राप्त करते हैं।

29. जो मेरे शरण आकर बुढापे और मौत से छूटने के लिये यत्न करते हैं वे आत्म ज्ञान और सम्पूर्ण कर्म को जानते हैं।

30. जो पुरूष अधिभूत अधिदैव और अधियज्ञ के सहित सबका आत्म रूप मुझ को जानता है यह स्थिर चित वाला अन्त काल में मेरे को प्राप्त होते हैं मुझे ही जानते है।

अध्याय 8-मुख्य वचन

1. अर्जुन ने पूछा – ब्रह्म क्या है, अध्यात्म क्या है कर्म क्या है, अधिदैव क्या है, अधिभूत, अधियज्ञ क्या है ?

3 परम् अक्षर उत्तम सब से उस का कभी भी नाश नहीं होता ऐसा सच्चा आन्नदधन परमात्मा ब्रह्म है हर जीव में जो न्यारा जीव आत्मा उसे अध्यात्म कहते हैं। सृष्टि के व्यवहार को उत्पन करता है उसको कर्म कहते हैं।

4. उत्पन्न और नाशवन्त पदार्थ अधिभूत हैं हिरण्यमय पुरूष अधिदेव हैं ब्रह्म इस शरीर में वासुदेव विष्णुरूप अधियज्ञ है।

17. ब्रह्मा का एक दिन हजार युग की और रात्रि भी एक हजार युग की जो मनुष्य तत्व सहित जानता है वो योगी काल के तत्व को जानता है।

18. योगी जानते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि दिखने में आती है ये ब्रह्मा का दिन होने से उस के सूक्ष्म शरीर से पैदा होती है और रात्रि होने से ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर में लीन होती है।

24. उत्तरायण के छः महीने में शुक्ल पक्ष (सहाई) में दिन के समय अग्नि जलती होवे उस वक्त (समय) शरीर छोडता है वो उपासक परमात्मा को परोक्ष भाव से जानता है वो ब्रह्म को प्राप्त होता है।

25. जब रात्रि का धुँआ चारों ओर होवे कृष्ण पक्ष में और दक्षिण के छः महिनों में जो सकाम कर्म करके शरीर छोडता है वो कर्म का फल भोग के फिर जन्म लेता है।

अध्याय 9-मुख्य वचन

2. ज्ञान सब विधाओं से उत्तम राज विद्या शुद्ध में शुद्ध अति पवित्र, उत्तम प्रत्यक्ष फल वाला धर्म युक्त साधन करने में भी सुगम सरल अविनाशी है।

4. मुझ परमात्मा से सारा जगत जल से बर्फ के तरह परिपूर्ण है सभी प्राणी मुझ आधार पर है मैं उन के आधार पर नहीं हूँ

5. ये सभी प्राणी मेरे में नहीं है मेरी योग माया और प्रभाव को देख मैं सभी के पालन पोषण और सबकी उत्पत्ति का आधार भी मैं हूँ।

8. हे अर्जुन त्रिगुणी माया को वश में रख कर स्वभाव के वश पराधीन प्राणियों को कर्मों के अनुसार रचता हूँ।

11. सारी सृष्टि का महेश्वर मैं हूँ मूढ़लोग मेरे परम भाव को न जान कर संसार के उद्धार के लिये मनुष्य रूप में रहते हुये मुझ परमेश्वर को साधारण मनुष्य तुच्छ कर के जानते हैं।

22. सच्चा योगी वो है जो मेरे में एकाग्र हो कर निरन्तर चिन्तन करते हुये निष्काम भाव से भजते हैं उनके योज्ञ क्षेम को मैं स्वयं पूरा करता हूँ (भार उठाता हूँ)।

30. कोई अतिशय दुराचारी भी एकाग्र भाव से मुझको भजता है वो सच्चा साधु है क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है और परमात्मा में मन स्थिर है वो मेरा भक्त नाश नहीं होता है।

32. स्त्री वैश्य शुद्र तथा पाप योनि चाणडालादि जो कोई भी हो वो भी मेरी शरण होकर परम् गति को प्राप्त होते हैं।

अध्याय 10-मुख्य वचन

2. महर्षिजन देवता लोग मेरे जन्म को नहीं जानते हैं क्योंकि मैं सब का आदि कारण हूँ।

3. जो मुझ को जन्म रहित अजन्मा अनादि तत्व से जानते हैं ऐसा ज्ञानवान् मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाते हैं।

37. यादव कुल में मैं कृष्ण वासुदेव हूँ, पांडवों में अर्जुन, मुनियों में वेदव्यास भी मैं हूँ

41. जो शक्ति सौम्य प्रभाव वाले पदार्थ तू देखता है वो सब मेरे तेज का एक अंश ही अभिव्यक्त जान।

42. इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है, मैं इस सम्पूर्ण जगत को अपनी योग शक्ति के एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ इसलिये मुझ को ही तत्व सहित जान।

अध्याय 11-मुख्य वचन

3. हे भगवान जैसा आप खुद को जानते हैं वैसे ही मैं मानता हूँ परन्तु तुम्हारे ईश्वरीय स्वरूप को मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ।

8. इन नेत्रों से मुझ को देखना असंभव है (समर्थ नहीं) है इसके लिये मैं तुझ को दिव्य (अलौकिक) चक्षु देता हूँ जिससे मेरे प्रभाव को और योग शक्ति को देख।

12. हजार सूर्यों के प्रकाश से ज्यादा प्रकाश अर्जुन ने देखा।

16. आपके अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रूपें वाला देखता हूँ मैं आपके न अन्त को, न मध्य को न आदि को ही।

26,27. धृतराष्ट्र के सभी पुत्र राजाओं के समुदाय सहित आप में प्रवेश कर रहे हैं और हमारे पक्ष के भी प्रधान योद्धाओं के सहित सब के सब आप के जलते हुये मुखों में बडे वेग से दौड़ते हुये प्रवेश कर रहे हैं।

30. इन सभी लोकों को प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रास करते हुये सब ओर से बार–बार चाट रहे हैं पूरें जगत को अपने तेज से परिपूर्ण करके तपा रहे हैं।

32. हे अर्जुन लोकों को नाश करने वाला महाकाल मैं ही हूँ तेरे युद्ध न करने से भी इन सब योद्धाओं का नाश हो जायेगा।

33. अतएव तू उठ – यश प्राप्त कर और शत्रुओं को जीत कर सम्पन्न राज्य को भोग ये सब शूरवीर पहले से ही मेरे द्वारा मारे हुये हैं तू तो केवल निमित्तमात्र बन जा।

37. सब आप को क्यों न नमस्कार करे जो आप सब का आदि करता ब्रह्मा से भी उपर ऊँचे हो, बेअन्त अक्षय हो, सत् असत् और उनसे परे आप ही ब्रह्म हो।

41. आप के प्रभाव को न जानते हुये आप मेरे सखा हैं ऐसा मानकर प्रेम से या प्रमाद से (बेइज्जती) भी मैने की है। हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे इस प्रकार हठ से भूल में हंसते हुये कहे या अपमानित किये गये मेरे सब अपराध की मैं आप से क्षमा मांगता हूँ मुझे इस भूल के लिये क्षमा करें।

48. ऐसा विश्व रूप वाला मैं न वेद और यज्ञों के अध्ययन से न दान से और न तपों से आप का ऐसा स्वरूप देखा जा सकता है।

52. जिस स्वरूप का तूने दर्शन किया है वो बड़ा कठिन है देवता भी सदा उस रूप के दर्शन की आकांक्षा करते रहते हैं।

54. ज्ञान यानी अनन्य भक्ति के द्वारा मुझे जाना जा सकता है और मेरा दर्शन करके मुझ को प्राप्त कर सकता है।

55. जो पुरुष मेरे को ही सब कर्म अर्पण करता है और केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्म करने वाला है मुझे ही सब कुछ जानता है। वो सच्चा मेरा भक्त है वैर भाव से रहित वो ही मुझको प्राप्त होता है।

अध्याय 12-मुख्य वचन

1. कोई भक्त आपके सगुण रूप परमेश्वर को भजते हैं और दूसरे आपके निर्गुण निराकार रूप को भजते हैं उन दोनों में से उत्तम कौन सा है?

2. जो मुझमें मन को एकाग्र निरन्तर मेरे भजन ध्यान में लगे हुये हैं ऐसी श्रद्धा वाले होकर मुझ सगुण रूप परमेश्वर को भजते हैं वो मेरे परम प्यारे उत्तम में उत्तम योगी है। योगियों से भी अति श्रेष्ठ है।

3,4. जो पुरूष इंद्रियों को वश में करके समान दृष्टि रखकर सब भूतों के हित में रहता है मन बुद्धि से परे, सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान नित्य एकरस रहने वाला निर्गुण ब्रह्म में ध्यान करते हुये वो मुझ को ही प्राप्त होते हैं।

5. परन्तु उन को निर्गुण परमात्मा का ध्यान करने में परिश्रम करना विशेष है कठिन साधन है साधारण देह धारण करने वाले मनुष्य के लिये ब्रह्म का ध्यान करना कठिन है।

6,7. जो भक्तजन सम्पूर्ण कर्मों को मुझ में अर्पण करके मुझ सगुण रूप परमेश्वर को तेल धारा समान प्रेम से निरन्तर ध्यान करता है और मुझ में चित्त लगाने वाले प्रेमी को मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार समुद्र से उद्धार करता हूँ।

12. बिना समझ के अभ्यास से-परोक्ष ज्ञान शास्त्र ज्ञान श्रेष्ठ है, विचार से उत्तम ध्यान है, ध्यान से श्रेष्ठ सब कर्मों के फल का त्याग है, कर्म अर्पण करना उत्तम् है वो परम शान्ति त्याग से तत्काल होती है। (तत्काल शान्ति को प्राप्त होता है)।

16,17,18,19. जो इच्छा रहित, अन्दर बाहर शुद्व, होशियार (चतुर) चिन्ता पक्षपात रहित कर्मों में अभिमान का त्यागी न कभी

हर्षित होता है न द्वेष करता है दोनों का त्यागी शुभ और अशुभ का सम्पूर्ण कर्मों का त्यागी है जो शत्रु-मित्र में सम, मान-अपमान में सम है तथा गर्मी-सर्दी और सुख-दुखादि द्वन्द्वों में सम है जो निन्दा-स्तुति को समान समझने वाला और रहने के स्थान में ममता और आसक्ति से रहित है वह स्थिर बुद्धि भक्त पुरूष मुझ को प्रिय है।

अध्याय 13-मुख्य वचन

1. हे अर्जुन – ये शरीर क्षेत्र है उस को जानने वाला क्षेत्रज्ञ इस नाम से उनको तत्व को जानने वाले ज्ञानिजन कहते हैं।

7,8,9. श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव –दम्भ का नहीं होना, किसी भी प्राणी को नहीं सताना, क्षमा भाव, मन वाणी की सरलता, श्रद्धा सहित गुरू की सेवा बाहर भीतर की शुद्धता, मन इंन्द्रियों सहित शरीर पर नियत्रंण (Control) पुत्र, स्त्री, घर और धन आदि में आसक्ति का अभाव जन्म मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुख और दोषों का बार–बार विचार न करना, प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित में सम रहना ये सब ज्ञानी है और दूसरा अज्ञानी।

13,14,16,17. दूसरा ब्रह्म है जो सब जगह व्यापक है सब इंन्द्रियों के विषय को जानने वाला है परन्तु सब इंन्द्रियों से दूर आसक्ति के रहित गुणों से दूर अपनी योग माया से सब को धारण करने वाला, जड़ चेतन सब भूतों को बाहर भीतर भरपूर और जड़ चेतन भी वो ही है सूक्ष्म होने के कारण जानने में न आने वाला परमात्मा विभागरहित आकाशवत् परिपूर्ण होने पर भी चर अचर सम्पूर्ण भूतों में जुदा–जुदा (अलग–अलग) प्रतीत होता है वो ही ब्रह्मा रूप से उत्पन्न करता है। विष्णु रूप से भूतों का पालन पोषण करता हैं, शिव रूप से नाश करता है, ये ब्रह्म तत्व ज्ञान से प्राप्त करके सभी के हृदय में स्थित है।

18. क्षेत्र और जानने योग्य परमात्मा तत्व सहित जान कर मेरे भक्त मेरे स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

23. इस प्रकार पुरुष को और गुणों से हित प्रकृति को जानता है तत्व के साथ वो सब प्रकार कर्म कर्तव्य करते हुए भी नहीं

जन्मता है और नहीं दूसरे जन्म को प्राप्त करता है।

27. जितना भी स्थावर जड्ग्म (जड़–चेतन) (चर–अचर) वस्तु उत्पन्न होती है उस को तू क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न जान पुरूष और प्रकृति के सम्बन्ध से ही सम्पूर्ण जगत की स्थिति है।

29. जो पुरूष सभी प्रकार से प्रकृति से ही किये जाते हुये देखता है तत्व से समझता है कि गुण गुणों में ही वर्तते हुये देखता है आत्मा को अकर्ता देखता है वही यथार्थ देखता है।

34. इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को विकार सहित प्रकृति से मुक्त होने को जो पुरूष ज्ञान नेत्र द्वारा तत्व से जानते हैं वे महात्मा पुरुष परम् ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

अध्याय 14-मुख्य वचन

3. मेरी यह ब्रह्म स्वरूप प्रकृति त्रिगुणी माया सब भूतों की गर्भाधान का स्थान है और मैं इन में चैतन रूप बीज का स्थापन करता हूँ इस जड़ चेतन के मिलाप से सब भूतों की उत्पति होती है।

4. नाना प्रकार की सब योनियों में जितने शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं प्रकृति तो उन सब की गर्भ में धारण करने वाली माता है। और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूँ।

5. सतो रजो तमो ये प्रकृति से उत्पन्न हुये हैं तीनों गुण ये अविनाशी आत्मा को शरीर से बाँधते हैं।

6. इन तीन गुणों में प्रकाश करने वाला निर्विकार सतो गुण तो निर्मल होने के कारण सुख की आसक्ति और ज्ञान की आसक्ति (अभिमान) से बाँधता है।

7. राग रूप रजो गुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न जान वो इस जीव आत्मा को कर्मों और उस के फल की आसक्ति से बाँधता है।

8. सब देह अभिमानियों को मोहित करने वाले तमो गुण को तो अज्ञान से उत्पन्न जान। वह इस जीवात्मा को प्रमाद आलस्य और निद्रा को बाँधता है (प्रमाद– इन्द्रियों के और अन्तःकरण की व्यर्थ चेष्टओं को)

9. सतो गुण सुख में लगाता है।

रजो गुण कर्मों में लगता है,

तमो गुण आलस में लगता है, ज्ञान को ढ़क देता है

11,12,17. सतो गुण से ज्ञान, रजो गुण से लोभ, तमो गुण से मोह आलस अज्ञान पैदा होता है, सतो गुण से अन्तःकरण और इन्द्रियों में चेतना और बोध शक्ति उत्पन्न होती है।

14, जब मनुष्य सतोगुण में शरीर छोड़ता है, तो वो उत्तम लोक स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है। जो रजो गुण से शरीर छोड़ता है, तो कर्मों में आसक्ति वाला होकर उत्पन्न होता है। जो तमो गुण में शरीर छोड़ता है तो कीड़ा पशु कम बुद्धि वाले जूनियों में जाता है।

19,20. जिस समय दृष्टा साक्षी चेतन में एक ही भाव से स्थित साक्षी पुरूष तीन गुणों के सिवाय दूसरे किसी को करता नहीं समझता गुण गुणों में वर्तता रहता है। तीन गुण से दूर सत चित आनन्दधन मुझ परमात्मा को तत्व सहित जानता है। इस काल में वह पुरूष इस स्थूल शरीर के कारण तीन गुण का उल्लंघन करके जन्म मरण बुढ़ापा और दुखों से मुक्ति पाकर परम आनन्द को प्राप्त करता है।

21. हे भगवान इस तीन गुणों से अतीत (दूर हुआ है) पुरूष कौन से स्वभाव वाला होता है ? कौन सी रीति से तीन गुणों से न्यारा होवे ?

22. जो पुरूष सतो गुणी कार्य रूप प्रकाश को रजो गुणी प्रकृति को और तमो गुणी मोह को नहीं परिवर्तित होने से खराब समझता है और नहीं निवृत होने की इच्छा रखता है।

23. जो साक्षी जैसा स्थित हो कर गुणों से विचलित नहीं होता है और गुण गुण में वर्तते हैं ऐसे समझते हैं।

जो सत् चित् आनन्द परमात्मा में एक ही भाव से स्थित रहता है और इस स्थिति से चलायमान नहीं होता है।

24,25. मान–अपमान में, प्रिय अप्रिय में, सुख–दुख में, मिट्टी–सोने को समान समझता है और जो सब कर्मो के आरम्भ से करतापने के अभिमान से रहित हुये हैं गुणातीत कहा जाता है।

26. जो अव्यभिचारी भक्ति से योग से मेरे को भजता है वो तीन गुणों का उल्लघंन (परे चले जाना) सत् चित् आनन्द स्वरूप में एक होने योग्य है।

अध्याय 15-मुख्य वचन

1. अर्जुन ज्ञान वालों ने इस संसार को एक अविनाशी पीपल के वृक्ष के समान कहते हैं आदि पुरूष मूल कारण परमात्मा है जिस की शाखायें और जड़ (पाँव) ऊपर है, जिस के पत्ते वेद है जो मनुष्य उन को मूल सहित (तत्व से) जानता है वो वेद जानने वाला ज्ञानी है।

2. इस वृक्ष की शाखायें जो प्रकृति के त्रिगुणी माया से नीचे उपर फैलती है तीन गुणों की माया से नीचे उपर फैलती है तीन गुणों के पानी द्वारा बढ़कर विषय मुनि, देव, मनुष्य, पक्षी, पशु उस की शाखायें नीचे उपर फैली हुई है। जिसमें मनुष्य अहम्ता ममता और वासनाओं रूपी जड़ से कर्म बन्धन से बंध के संसार में फैला हुआ है।

3. तत्व ज्ञान होने से संसार नहीं बचता इस के आदि अंत और बीच किसी को भी पता नहीं है और फिर सदैव स्थित रहने वाला नहीं है संसार क्षण भंगुर है। इसलिये अहम्ता ममता और वासना वाले मजबूत जड़ वाले वृक्ष को वैराग्य रूपी तलवार से काट लेवें।

8,9. जब जीव आत्मा एक शरीर छोड़कर दूसरा जन्म धारण करती है तब अपने साथ मन इंद्रियों को इस तरह ले जाती है, जिस तरह हवा आस–पास की खुशबू को ले जाती है। वो जीवात्मा कान नाक जीभ और आंखों त्वचा मन से विषय भोगता है।

11. अभ्यास से योगी अपने हृदय में स्थित आत्म तत्व को जानता है परन्तु अपने अन्तःकरण में शुद्वनहीं है ऐसा अज्ञानी मनुष्य यत्न करते भी आत्मा को नहीं जानता।

16. संसार में दो प्रकार की हस्ती हैं एक असली आत्मा जो नाश रहित है दूसरी नाशवान जो प्रकृति की बनाई हुई है जैसे देह नाशवान है।

17. परमात्मा अविनाशी और नाशवन्त दोनों से उपर है जो त्रिगुणी माया के जर्रे–जर्रे में व्यापक है और सब की पालना करता है सब का सहारा बना हुआ है वो परमात्मा स्वयं कायम है

18,19. क्यो कि जड़ अविनाशी दोनों से परे हूँ उसके लिये लोकों में वेदों में पुरूषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ।

जो ज्ञानवान मेरे को पुरूषोत्तम कर के जानता है वो सब कुछ कर के जानता है हर काम में मेरी उपासना करता है जो इस अति रहस्य को जानता है फिर कुछ भी इस के लिये करने के योग्य नहीं बचता (रहता)।

अध्याय 16-मुख्य वचन

1,2. हे अर्जुन! दो प्रकार के स्वभाव सुनाता हूँ एक दैवी सम्पदा का दूसरा आसुरी सम्पदा का। निर्भयता, अन्तःकरण की शुद्धि तत्व ज्ञान के लिये ध्यान, दिव्य स्थिति, सात्विक दान, इंद्रियों का दमन, उत्तम कर्म का आचरण, वेद शास्त्र का पढ़ना और पढाना, इन्द्रियों सहित अन्तःकरण की सरलता, सत्य मन वाणी शरीर को किसी को भी कष्ट न देना, यथार्थ और सरल भाषण देना, अपनी बुराई करने वाले पर भी क्रोध न करना, कर्तापने के अभिमान का त्याग, अपरिमता चित्त के चंचलता का अभाव, निन्दा न करना, बिना स्वार्थ के दया करना,विषय में आसक्ति का अभाव, किसी से भी वैर भाव का न होना, अभिमान का अभाव दैवी सम्पदा के लक्षण है।

4. पाखंड, दम्भ, अभिमान क्रोध, कठोर वाणी और अज्ञान ये सब आसुरी सम्पदा के लक्षण है।

5. इस दो प्रकार के सम्पदाओं में दैवी सम्पदा तो मुक्ति के लिये और आसुरी सम्पदा बाँधने के लिये मानी गयी है।

8,13. आसुरी सम्पदा वालों के लिये न अन्दर की न बाहर शुद्धि है, वो कहते हैं कि जगत बिना ईश्वर के स्त्री पुरूष के मिलाप से हुआ है केवल काम ही इस का कारण है विषय भोग को ही आनन्द मानते हैं झूठ से धन जमा करने की कोशिश में है (संग्रह करने की चेष्टा) वो कहते हैं आज ये मिला कल ये पदार्थ प्राप्त करूंगा। मै शत्रु को मारूंगा मुझे सभी सिद्वियाँ प्राप्त हुई है।

18,19. अंहकार बल घमंड (अभिमान) कामना क्रोध के अधीन होकर दूसरों की निन्दा करना अपने और दूसरों के शरीर में

स्थित मैं अर्न्तयामी हूँ उससें द्वेष करते हैं इन पाप करने वालों को मैं संसार में फिर–फिर आसुरी जूनियों में सुअर, कुत्ता कीड़ा के जूनियों में पैदा करता हूँ।

21 काम, क्रोध, लोभ ये तीनों नर्क के दरवाजे हैं, आत्मा का नाश करने वाले हैं, अधोगति में ले जाने वाले हैं इस लिये इन तीनों को त्यागना चाहिये।

23 जो पुरूष शास्त्र विधि त्याग कर अपनी इच्छा से चलता है वो न तो सिद्धि को प्राप्त होता है न ही सुख को प्राप्त होता है।

अध्याय 17–मुख्य वचन

1. जो मनुष्य शास्त्र विधि **को** छोड़कर सिर्फ श्रद्धा से देवताओं की पूजा करता है उसकी स्थिति कैसी है क्या वो सात्विक है कि राजसी या तामसी है ?

2. मनुष्य की बिना शास्त्र विधि के संस्कार से सिर्फ स्वभाव से पैदा हुई श्रृद्धा उसके गुणों के अनुसार सात्विकी, राजसी, तामसी होती है।

3. सब मनुष्य की श्रृद्धा उनके अन्तःकरण के अनुसार होती है जैसी जिसकी श्रृद्धा है वैसा ही उसका स्वरूप है।

4. उनमें से सात्विक – देवताओं की

राजसी पुरूष – यक्षों की राक्षसों की

तामसी पुरूष – प्रेत और भूतों की पूजा करते हैं।

6. शरीर के पाँच महातत्व और अन्तःकरण में स्थित मुझ अन्तर्यामी परमात्मा को कष्ट नहीं हैं उनको तू आसुरी स्वभाव वाले जान।

7. खाना भी सबको तीन प्रकार वाला अपनी प्रकृति के अनुसार प्रिय होता है।

8. आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य सुख और भूख को बढ़ाने वाला रसयुक्त अच्छा लगने वाला स्थिर रहने वाला ये सात्विक पुरूष को प्रिय होते हैं।

9. खट्टे, तीखे, खारा, गर्म, रूखे दाह कारक, रोग पैदा करने वाले रजो गुण वाले को प्रिय हैं।

10. आधा पक्का हुआ रस रहित, दुर्गन्धयुक्त बासी जूठा स्वाद रहित तामसी अपवित्र लोगों को प्यारा है।

''यज्ञ''

11. जो यज्ञ शास्त्र विधि अनुसार किया जाता है फल की इच्छा नहीं रखता है उसके द्वारा किया जाता है वह सात्विक है। जो यज्ञ दंभ, फल की इच्छा रख कर किया जाता है वो राजसी यज्ञ है।

13. शास्त्र विधि से हीन बिना श्रद्धा के किये जाने वाला यज्ञ को तामसी यज्ञ कहते हैं।

''शरीर का तप''

14. देवता ब्राह्मण गुरू ज्ञानीजनों की सेवा पवित्रता सरलता, ब्रह्मचर्य और अंहिसा यह शरीर सम्बन्धी तप कहा जाता है।

''वाणी का तप''

15. जो वाणी विक्षेपता न पैदा करे मीठी वाणी दूसरों के हित की वेद शास्त्रों की अभ्यास की वाणी परमेश्वर के अभ्यास की वाणी, तप की है उस को वाणी का तप कहा गया है।

''मन का तप''

16. मन की प्रसन्नता, कोमलता, शान्त भाव, माठ (चुप) में रहना, मन को रोक कर भगवत चिन्तन करने का स्वभाव अन्दर की शुद्वता, कपट न करना यह मन का तप है।

''दान तीन प्रकार का''

20. सात्विक दान :– देश काल, पात्र देख कर फल की इच्छा न रख कर किया हुआ दान।

21. जो दान लाचार, तकलीफ से, दिल में फल की इच्छा रखकर, वापसी में अपना फायदा मन में रख कर यह राजसी दान है।

22. जो दान मान से नहीं धिक्कार से अनाधिकारी को देश काल न देख कर नीच कर्म करने वालों को दिया जाता है। यह तामसी दान है।

'' ॐ तत सत्त ''

23. ॐ तत् सत्त ये तीन प्रकार का ब्रह्म के नाम है इन से ही सृष्टि के आदिकाल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये हैं इसके लिये वेदों को उच्चारण करने वाले श्रेष्ठ पुरूषों की शास्त्र विधि से नियत यज्ञ दान और तप रूप क्रियाएँ सदा'' परमात्मा के नाम को उच्चारण करके ही आरम्भ होती है।

25. तत् अर्थाथ नाम से कहे जाने वाले परमात्मा का ही यह सब है इस भाव से फल को न चाहकर नाना प्रकार का यज्ञ तप रूपी क्रियाएँ कल्याण की इच्छा पुरूषों द्वारा की जाती है।

26. सत् इस प्रकार यह परमात्मा का नाम सत्य भाव में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है उत्तम कर्म में भी ''सत्'' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

29. इसलिये मनुष्य को सत् चित आनन्द परमात्मा के नाम का चिन्तन करते निष्काम भाव से सिर्फ परमेश्वर का शास्त्र विधि से किये हुये कर्मों का श्रद्धा से और उत्साह से कर के अपनी रहिणी बनावें।

अध्याय 18-मुख्य वचन

1. अर्जुन ने कहा – भगवान मुझ को सन्यास और त्याग का अर्थ अलग–अलग समझाओ ?

4. उन (सन्यास और त्याग) में से त्याग का अनुभव सुन, "त्याग तीन प्रकार का है, सात्विकी, राजसी, तामसी

5. यज्ञ, दान, रूप कर्म त्याग करने के योग्य नहीं है परन्तु वह तो आवश्यक कर्तव्य है क्योंकि यज्ञ दान और तप यह शुभ कर्म है बुद्धिमान के हृदय को पवित्र करने वाले हैं।

6. इसलिये यज्ञ, दान, तप शुभ कार्य आसक्ति और फल की इच्छा छोड़ कर करना चाहिये ये मेरा निश्चय है उत्तम मत भी है।

7. नियत स्वाभाविक कर्म का त्याग करना उचित नहीं है इसलिये मोह के कारण उसका त्याग करना तामसी त्याग करना कहा गया है।

8. अगर कोई मनुष्य कर्मो को कठिन दुखदाई समझ कर तकलीफ से बचने के लिये नहीं करता है तो वो रजो गुणी त्याग है इस से त्याग का फल नहीं मिलता है।

9. जो शास्त्र विहित कर्म करना कर्तव्य है इसी भाव से आसक्ति और फल का त्याग करके किया जाता है। वह सात्विकी (सतोगुणी) त्याग कहा गया है।

10. शुद्ध सतोगुणी बुद्धिमान त्यागी जिसके सब भ्रम दूर हो गये है वो शुभ कर्म में मोह नहीं रखता और बुरे कर्मो से द्वेष नहीं करता (नफरत नहीं करता)।

11. शरीर में रहित सब कर्मों को मनुष्य त्याग नहीं सकता इसलिये जो मनुष्य कर्मो के फल का त्यागी है, वही त्यागी है।

12. सकामी मनुष्य के कर्मों का फल अच्छा या बुरा दोनों मरने के बाद मिलता है परन्तु त्यागी मनुष्य के कर्मों का फल कभी भी नहीं निकलता उस का कर्म, कर्म ही नहीं है।

13,14. पाँच कारण है जिन से सब कर्म सिद्ध होते हैं देश (आधार) स्थूल शरीर, करता, कर्ण यानी साधन, इंद्रियों जिन के द्वारा कर्म होते हैं और क्रियाएँ जीव आत्मा यह कर्म सिद्ध होने के 5 कारण हैं।

16. यह होते भी मन्द बुद्धि वाले आत्मा को करने वाले मानते हैं ऐसे अशुद्धबुद्धि वाले अज्ञानी आत्मा को यथार्थ नहीं समझते।

17. जो अपने को किसी कर्म का कर्ता नहीं मानता वो अगर सब लोगों को मार भी दे तो भी नहीं मारता न ही उसको पाप लगता है क्योंकि देह अभिमान और स्वार्थ से रहित है।

18. ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञय ये तीन प्रकार के कर्म हैं, कर्ता करण क्रिया ये तीन प्रकार के मिलाप से काम सिद्ध होता है।

19. ज्ञान, कर्म, कर्ता गुणों के भेद तीन प्रकार के कहे गये हैं।

20,21,22. जिस ज्ञान से सब प्राणियों में मनुष्य एक भाव से आत्मा (परमात्मा भाव को) देखता है वह सतोगुणी ज्ञान है जिस ज्ञान से सब में जुदा–जुदा आत्मा (परमात्मा) अनेक भाव से अलग–अलग जानता है। उस ज्ञान को तू राजस जान जिस ज्ञान से एक शरीर में बिना सोच विचार के परमात्मा समझता है वह गलत रास्ता है उस को तामस कहा गया है।

24,25. जो कर्म शास्त्र विधि से नियत किया हुआ है और कर्तापने के अभिमान से रहित हो तथा फल न चाहने वाला बिना राग द्वेष के किया गया हो वह सात्विक कहा गया है। जो कर्म फल की इच्छा से, अंहकार से बहुत परिश्रम से करते हैं वह राजस

है। जो कर्म बिना सोच विचार से मोह सहित दूसरों को नुकसान पहुँचाने के विचार से अपने ताकत के विचार के सिवाय करते हैं वह तमो गुणी है।

26,27,28. जो कर्ता मोह अंहकार रहित, धीरज हिम्मत से हारजीत हर्ष शोक रहित सब में समान रहता है वो सतोगुणी कर्ता है मोह इच्छा वाला लोभी बेरहम (दूसरों को कष्ट देने वाला) अशुद्धाचारी और हर्ष शोक से लिप्त हैं वह रजोगुणी कर्ता है।

जो विक्षेप चित वाला चंचल बेअक्ल, जिद्दी, आलसी, घमडी दूसरों का बुरा करने वाला तामसी कर्ता है।

29,30,31,32. बुद्धि धीरज के गुणों के अनुसार तीन प्रकार की मानी गई हैं। जो बुद्विप्रवृति और निवृति, मोक्ष और बन्धन, भय और निर्भय का यथार्थ भेद जानती है वो सात्विकी है। जो बुद्धि धर्म–अधर्म प्रवृति और निवृति के भेद को नहीं जानती वो रजोगुणी है, जो बुद्विअज्ञानता के कारण अधर्म को भी धर्म मानती है इसी प्रकार सब बातों को भी विपरीत मान लेती है वह बुद्धि तमो गुणी जान।

33,34,35. सात्विक धारणा है कि मन प्राण इंद्रियों के क्रियाओं को वस (Control) में रखता है एक चित्त होकर एकाग्र से ध्यान योग करता है।

जिस धारणा के द्वारा मनुष्य अपनी इच्छा पूरी करने के लिये धर्म अर्थ काम को धारण करता है वो रजोगुणी धारणा है।

जिस का धीरज कच्चा है जिस कारण आलस, भय निराशाई हठ नहीं छोडता वो तमो गुणी धारणा है।

36,37,38,39. सुख तीन प्रकार का है जो सुख अभ्यास मेहनत से मिलता है और दुख को निवृत करता है जो आरम्भ में जहर

जैसा परन्तु फल अमृत जैसा दे वो आत्म ज्ञान से उत्पन्न होता है, वो सात्विक सुख है। जो सुख विषयों और इंन्द्रियों के मिलाप से पहले अमृत जैसा परन्तु जिसका विष जैसा अन्त में है वह रजो गुणी सुख है।

जो सुख आरम्भ में अन्त में मोह में मूर्छा करता है निंद्रा, आलस, गफलत, ऐश्वर्य मान पैदा करता है वो तमो गुणी सुख है।

40. जमीन आसमान में दैवी या मनुष्य में से कौन सी प्रकृति इन तीन गुणों से रहित हो ?

41. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के तथा शुद्रों के कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा विभक्त किये गये हैं।

42,43,44. मन और इंद्रियों का दमन करना, पवित्रता, तप करना, धर्म के लिये कष्ट सहना, दयावान, सरलता, परमात्मा में पूर्णतः विश्वास, शास्त्र का ज्ञान ये ब्राह्मण का कर्म है।

शूरवीरता, तेज, धीरज, चतुरता, और युद्व में से न भागना, दान देना, राज करना, सब का हित करना, प्रजा को बालक समझ प्रेम करना ये क्षत्रियों के धर्म है खेती करना सच्चाई से व्यापार करना, वैश्य का कर्म है और तीनों वर्णो की सेवा करना शूद्र का कर्म है।

45. अपने राज के कर्म करने से मनुष्य भगवत् प्राप्ति रूप और परम सिद्धि को प्राप्त करता है। जो परमात्मा सारी सृष्टि में व्यापक है उस को मनुष्य अपने कर्मों से राजी करता है। वो परम सिद्धि को प्राप्त करता है।

47. पर धर्म दूसरे का धर्म पालना सरल होवे तो भी गुण रहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है क्योंकि स्वभाव से नियत किये हुये स्वधर्म

रूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता।

48. जिस का जो धर्म है (वरण) है वो चाहे कितना भी नीच हो तो छोडना नहीं चाहिये क्यों कि सब कर्मों में दोष है जैसे अग्नि में धुँआ है।

56. निष्कामी कर्म योगी जो मेरी शरण आया है वो सब कर्मों को करता हुआ मेरी कृपा से अमर अविनाशी परम पद को प्राप्त करता है।

60. जो कर्म तू मोह और अज्ञानता के कारण नहीं करना चाहता उस को भी स्वाभाविक कर्म से परवश होकर करेगा।

62. तू हर तरह से आत्मा की शरण ले उस की कृपा से तू परम पद को प्राप्त करेगा।

66. सब कर्म धर्म का त्याग कर एक आत्मा की शरण ले मैं (सर्व शक्तिमान परमेश्वर) तुझे सभी पापों से मुक्त कर दूँगा।

67. जो तपस्या और भक्ति के बिना सुनना चाहे श्रद्धा और विश्वास नहीं है मेरी निंदा (दोष) करता है उस के लिये यह गीता का ज्ञान नहीं है।

68. जो पुरुष यह गीता का ज्ञान भक्त–भक्त को निष्काम भाव से सुनायेगा वो मुझ को प्राप्त करेगा मुझ में ही लीन हो जायेगा उससे बढकर मेरा प्रिय कार्य करने वाला सारी सृष्टि में नहीं है।

73. हे अच्युत! पार ब्रह्म परमात्मा आप की कृपा से मेरा मोह नाश हो गया है मैने अपने आप को पहचाना लिया है, मेरा संशय भ्रम सब दूर हो गये अब आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।